भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

A Peer Reviewed and Refereed Journal

ISSN 0973-9777
GISI Impact Factor 3.5628
वर्ष-१४ अंक-१,२,३,४
जनवरी, मार्च, मई, जुलाई २०२०

एम.पी.ए.एस.वी.ओ.
द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य
सहसंयोजन से प्रकाशित

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ० मनीषा शुक्ला, maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो० विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ०प्र०, भारत

डॉ० नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, उ०प्र०, भारत

प्रो० उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ०प्र०, भारत

सम्पादक

डॉ० महेन्द्र शुक्ल, डॉ० अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ० मंजू वर्मा, डॉ० अमित जोशी, डॉ० अर्चना तिवारी, डॉ० सीमा रानी, डॉ० सुमन दुबे, डॉ० सच्चिदानंद द्विवेदी, डॉ० मनोज कुमार अग्निहोत्री, पाल सिंह, डॉ० पौलमी चटर्जी, डॉ० राम अग्रवाल, डॉ० शीला यादव, डॉ० प्रतीक श्रीवास्तव, जय प्रकाश मल्ल, डॉ० त्रिलोकीनाथ मिश्र, प्रो० अंजली श्रीवास्तव, विजय कुमार प्रभात, डॉ० जे०पी० तिवारी, डॉ० योगेश मिश्रा, डॉ० पूनम सिंह, डॉ० रीता मौर्या, डॉ० सौरभ गुप्ता, डॉ० श्रुति विग, दीप्ति सजवान, डॉ० निशा यादव, डॉ० रमा पद्मजा वेदुला, डॉ० कल्पना बाजपेयी, डॉ० ममता अग्रवाल, डॉ० दीप्ति सिंह, डॉ० आभा सिंह, डॉ० अरूण कान्त गौतम, डॉ० राम कुमार

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

पी० त्रिराची (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक, थाईलैंड), डॉ० सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), माजिद करीमजादेह (ईराक), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ० होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल, maheshwar.shukla@rediffmail.com

पाठकों से

आन्वीक्षिकी, भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण वाराणसी उ०प्र०, भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी, भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/- डॉक शुल्क, एक प्रति 1300+100/- डॉक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डॉक खर्च, एक प्रति 1000+डॉक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है, अतः किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें -

B32/16A-2/1, गोपालकुंज, नरिया, लंका वाराणसी, उ०प्र०, भारत, पिन कोड- 221005, मो०नं० 09935784387, टेलीफोन नं० 0542-2310539, E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन (रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : **महेश्वर शुक्ल**,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन : एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण

प्रकाशन तिथि : १ जुलाई २०२०

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564, पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008, B32/16A-2/1, गोपालकुंज, नरिया, लंका, वाराणसी उ०प्र०, भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-१४ अंक-१,२,३,४ जनवरी,मार्च,मई,जुलाई २०२०

शोध प्रपत्र

महाभारत की उपजीव्यता -डॉ0 अंशुमाला मिश्रा 1-2
नारी का प्रेमचन्द के साहित्य में बदलता स्वरूप -प्रियंका गुप्ता 3-5

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी कविता का प्रमुख स्वर -डॉ0 प्रभा दीक्षित 6-10
बालकों के विकास में पोषण एवं स्वास्थ्य का प्रभाव -अर्चना चौधरी 11-15

भारत की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था : एक अवलोकन -डॉ0 शिखा दीक्षित 16-20
ईसाई संस्कृति का मुण्डा संस्कृति पर प्रभाव -मुकेश कुमार 21-26

भारतीय लोकतंत्र -डॉ0 राजेश सिंह 27-32
भारत में वृद्धों की स्थिति : समस्यायें एवं समायोजन -डॉ0 रीता मौर्या 33-36

भारतीय ज्ञान परम्परा में आयुर्वेद : अर्बुद के विशेष संदर्भ में -डॉ0 मनीषा शुक्ला 37-41
झारखण्ड की मुण्डा जनजाति की नारी जीवन-शैली -मुकेश कुमार 42-45

शरणदाता : सृजक एवं सर्जक -सव्यसाची मिश्र 46-50
आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी के संदर्भ में -श्रीमती पूनम आर्या 51-54

स्वतंत्रता की प्राप्ति एवं मिथिलांचल में उसके परिणाम -डॉ0 डी0एन0 सिंह 55-59
पर्यावरण : समस्या एवं समाधान -डॉ0 लवलेश कुमार यादव 60-65

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत -डॉ0 अरूण कुमार 66-71
भारतीय कृषि के विकास एवं अनुसंधान का महत्व -देवेंद्र बहादुर सिंह 72-75

नाभिकीय विखण्डन/ संलयन एवं नाभिकीय रिएक्टर पर संक्षिप्त चर्चा -अजय कुमार सिंह 76-78

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2020) **14,1-2**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 अप्रैल 2018

महाभारत की उपजीव्यता

डॉ0 अंशुमाला मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महाभारत की उपजीव्यता* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंशुमाला मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

महाभारत आख्यान, नीति, धर्म और सांस्कृतिक तथ्यों का आकर-ग्रंथ है। महाभारत की रोचकता, सरलता, सरसता और विद्वत्ता ने परकालीन साहित्यकारों को इतना प्रभावित किया कि वे महाभारत को अपना प्रमुख उपजीव्य ग्रंथ मानने लगे। किसी ने आख्यान लिया, किसी ने धार्मिक तत्त्व, किसी ने सांस्कृतिक तत्त्व और किसी ने चरित्र-चित्रण। इस प्रकार यह सबसे प्रमुख उपजीव्य काव्य हो गया। स्वयं महाभारत में इसकी उपजीव्यता का अनेक प्रकार से उल्लेख है -

सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति। पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः।।[१]
इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः। पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः।।[२]

महाभारत पर आश्रित प्रमुख ग्रंथ विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं -

(१.) काव्य ग्रंथ; भारवि कृत किरातार्जुनीयम्, माघ कृत शिशुपाल बध, क्षेमेन्द्र कृत भारत-मंजरी, श्रीहर्ष कृत नैषधीय चरित, वामन भट्ट बाणकृत नलाभ्युदय।

(२.) नाटक ग्रंथ; भास कृत दूर घटोत्कच, दूतवाक्य, कर्णभार, मध्यम व्यायोग, पंचरात्र और उरूभंग, कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तलम्, भट्टनारायण कृत वेणीसंहार, राजशेखर कृत बाल-भारत।

(३.) चम्पू ग्रंथ; त्रिविक्रम भट्ट कृत नलचम्पू, अनन्त भट्ट कृत भारत चम्पू, नारायण भट्ट कृत पांचाली-स्वयंवर चम्पू, राजचूड़ामणि दीक्षित कृत भारत चम्पू, चक्रकवि कृत द्रौपदी परिणय चम्पू।

महाभारत का सांस्कृतिक महत्व

रामायण के पश्चात् महाभारत ही सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यदि वास्तविकता की दृष्टि से देखा जाय तो महाभारत सांस्कृतिक दृष्टि से रामायण से भी बढ़कर है। संस्कृति और सभ्यता का महाभारत

* वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०२०, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

में जितना विशुद्ध चित्रण मिलता है, उतना अन्यत्र किसी भी ग्रंथ में दुर्लभ है। महाभारत का वास्तविक सांस्कृतिक महत्व भगवद्गीता के कारण है। गीता करोड़ों हिन्दुओं के लिए न केवल आचार-संहिता है, अपितु वेद के समकक्ष एक धर्मग्रंथ है। आर्यधर्म के सभी भेद-उपभेद गीता की प्रामाणिकता पर नाममात्र भी संदेह नहीं करते। सत्य तो यह है कि गीता आर्य-धर्म को समन्वित एवं सूत्र-बद्ध करने वाली शृंखला है। महाभारत एक नहीं, अनेक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रण, राष्ट्रीय भावना का उदय, आसुरी प्रवृत्तियों के दमन का प्रयास, भौगोलिक अनेकता में एकता, जीवन-दर्शन की व्यावहारिक दृष्टि से व्याख्या, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता, महिलाओं में अब लालत्व के परित्याग की प्रवृत्ति, राजनीति-कूट-नीति-छद्मनीति-दण्डनीति और अनीति का व्यावहारिक प्रदर्शन, राजधर्म का सर्वांगीण निरूपण, आख्यान साहित्य का अक्षय कोष, नीति-शास्त्र की बहुमूल्य निधि एवं चतुर्वर्ग की सभी समस्याओं का समाधान है। इसमें एक ओर राजधर्म का उपदेश है तो दूसरी ओर मोक्ष-धर्म का, एक ओर अशान्ति है तो दूसरी ओर शान्ति चर्चा, एक ओर कर्म-मार्ग है तो दूसरी ओर ज्ञान-मार्ग, एक ओर दुर्योधन जैसा सहज-शत्रु है तो दूसरी ओर युधिष्ठिर जैसा अजातशत्रु, एक ओर भीष्म पितामह जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं तो दूसरी ओर शिखण्डी जैसा क्लीब, एक ओर अभिमन्यु जैसा कर्मशूर है तो दूसरी ओर अश्वत्थामा जैसा वाक्शूर, एक ओर श्रीकृष्ण जैसे योगिराज और नीति-निपुण हैं तो दूसरी ओर दुःशासन जैसा दुश्चरित्र और नीति-विध्वंसक, एक ओर विदुर जैसे ज्ञानी और पवित्रात्मा है, तो दूसरी ओर शकुनि जैसे छद्मजीवि, एक ओर भीम जैसा पराक्रमी महारथी है तो दूसरी ओर जयद्रथ जैसा कायर।

इस प्रकार महाभारत में विरोधी गुणों का समावेश है। इसमें विरूपता में एक-रूपता, अनेकता में एकता, विशृंखलता में समन्वय, व्यवहार में आदर्श, अशान्ति में शान्ति, प्रेय में श्रेय और धर्मार्थ में मोक्ष का समन्वय है।

स्रोत

[१]वेदव्यास -महाभारत, आदिपर्व १-१०८, भारती विद्याभवन, संस्करण -१९५८
[२]वही, आदिपर्व २-३८६

सहायक ग्रंथ

किरातार्जुनीयम् -भारवि, अक्षय वट प्रकाशन, इलाहाबाद
द इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन लिटरेचर -दत्ता, अमरेश, भाग-२, ISBN 978-81-260-1194-0
द्रौपदी परिणय चम्पू -चक्रकवि
नलचम्पू -त्रिविक्रम भट्ट
महाभारत ऑक्सफोर्ड डिक्शेनरी
वेणीसंहार -भट्ट नारायण, चौखम्भा सुरभारती, प्रकाशन- वाराणसी

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2020) **14,3-5**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 अप्रैल 2018

नारी का प्रेमचन्द के साहित्य में बदलता स्वरूप

प्रियंका गुप्ता*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *नारी का प्रेमचन्द के साहित्य में बदलता स्वरूप* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *प्रियंका गुप्ता* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भूमिका

साहित्य और समाज एक दूसरे के अभिन्न अंग है। साहित्य समाज की गतिविधियों का दस्तावेज है। साहित्य के माध्यम से ही समाज के सम्पूर्ण जीवन को समझा जा सकता है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। समाज का प्रति–बिम्ब साहित्य रूपी दपर्ण में देखा जा सकता है। साहित्य में जनता एवं समाज की चित्तवृतियाँ आकांक्षायें आदि संचित रहती हैं। कोई भी साहित्य सामाजिक चेतना के अभाव में नहीं रचा जा सकता है। नारी भी इस समाज की एक अंग हैं, परन्तु प्रेमचन्द पूर्व युगीन समाज में नारी के जो चित्र उपस्थित होते है, उसमें नारी की स्थिति एकदम दीन–हीन, लाचार एवं पराधीन ही थी। ''प्रेमचन्द पूर्व युगीन उपन्यासकारों का ध्यान विशेष रूप से उपदेश देना तथा जासूसों के कार्य, तिलस्म आदि बातों पर होने के कारण उन्होनें नारी जीवन का विशेष चित्रण नहीं किया। केवल कथावस्तु को बढ़ाने के लिए एवं रोचक बनाने के लिए आवश्यकता के अनुसार नारी चित्रण का उपयोग किया गया है। अत: इन उपन्यासों में चित्रित नारियों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व या व्यक्तित्व दिखाई नहीं देता है।''[१]

डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार ''उस नए युग में नारी के ऊपर से उस भौंडे कृत्रिम और अविश्वासपूर्ण आवरण को उतार कर जिसे प्रेमचन्द पूर्व–काल के उपन्यासकारों ने अपनी तथा कथित आदर्शवादिता एवं सुधारवादिता के जोश में आकर पहना दिया था और जिसके फलस्वरूप नारी का स्वरूप बोझिल ही नहीं हो गया था, आडंबरपूर्ण और अविवेकपूर्ण सा प्रतीत होने लगा था। नारी की आत्मा को उसकी तमाम अच्छाईयों और बुराईयों के साथ प्रेमचन्द ने पहली बार यथार्थवादी ढ़ंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया।''[२]

* शोधछात्रा, एडवांस्ड डेंटल क्लिनिक, नियर पोस्ट ऑफिस (तीजारा) अलवर (राजस्थान) भारत

© लेखक २०२०, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रेमचन्द साहित्य में नारी

प्रेमचन्द जी के साहित्यों में नारी के ढेरों रूप हमने देखें जिनमें समाज को देखने, परखने और जाँचने का मौका मिला। प्रेमिका, विधवा, माता, परिणीता, मेहनतकश, वेश्या और समाज सेविका आदि कई रूपों में उनकी नारी पात्र अमिट छाप छोड़ती है। जहाँ वर्तमान और भूतकाल की विषम स्थिति के दर्शन उनके उपन्यासों में होते है वहीं भविष्य को भी काफी आगे तक देखा गया है। अत: उनके साहित्य में नारी पात्र, स्त्री विमर्श का बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत करते हुए समाज का प्रतिनिधित्व करती है। स्त्री की मनोदशा, उसकी जटिलताओं, समाज में उसकी स्थिति पर ढ़ेरों साहित्य रचे गए, उनमें साहित्य सम्राट प्रेमचन्द का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रेमचन्द जी के नारी पात्रों में शहरीय वर्ग, गाँव का किसान समुदाय और अभिजातीय वर्ग के दर्शन होते है। अत: इनके व्यवहार, आचरण, प्रतिक्रियाओं पर सामंती आर्थिक व्यवस्थाओं का पूरा प्रभाव पड़ता है। उनकी कृतियों में सामाजिक परिस्थितियाँ सत्यता लिए हुये ज्यों की त्यों नजर आती है। संघर्षरत एवं मेहनतकश नारियाँ प्रेमचन्द के साहित्य की जान है।

गोदान में *धनिया* सशक्त इरादें की निडर और धैर्यवान स्त्री यथासंभव परिस्थितिवश विरोध और विद्रोह का साहस रखती है। *'झुनिया'* प्यार करके शादी का फैसला करती है यहाँ वो पुरूष से ज्यादा सशक्त है। पति में हिम्मत नहीं होने की वजह से सास, ससुर को अपने रिश्ते के बारे में खुद बताती है।

स्त्री को पुरूष की साथी होना चाहिए, न की सेविका यह स्थिति काफी दिनों तक समझी नहीं जा सकी या स्त्रियों में स्वीकारने की हिम्मत नहीं थी। प्रेमचन्द जी *'कायाकल्प'* उपन्यास की नारी पात्र के माध्यम से इसे समझाने की कोशिश करते है। नायक की स्त्री पूछती है –''नारी के लिए पुरूष सेवा से बढ़कर और कोई विलास, भोग एवं श्रृंगार नहीं है परन्तु कौन कह सकता है कि नारी का यह त्याग उसका यह सेवा भाव ही आज उसके अपमान का कारण नहीं हो रहा है।''[३] प्रेमचन्द जी के नारी पात्रों में *'जालपा'* (गबन उपन्यास की नायिका) एक नए ढंग की स्त्री है। वह परिस्थितियों से टक्कर लेती है लेकिन कभी धैर्य नहीं खोती। भारी से भारी मुसीबत पड़ने पर वह विवेक से काम लेती है और कठिनाइयों का सामना करने के लिए नये–नये दाव–पेंच निकाल लेती है। वहीं प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यास *'कायाकल्प'* की नारी पात्र *'अहिल्या'* को इतना सबल बनाया है कि जब साम्प्रदायिक दंगे के दौरान ख्वाज़ा साहब का बेटा उसे उठा कर ले जाता है और बालात्कार की चेष्टा करता है तो वह उसकी ही छुरी से उसकी हत्या कर देती है।

'मंगलसूत्र' उपन्यासों में प्रेमचन्द जी नारी के *'आश्रिता'* और उसके विरोध के मुद्दे को दर्शाते है। *संतकुमार* अपनी पत्नी *'पुष्पा'* से कहते है– ''जो स्त्री पुरूष पर अवलंबित है उसे पुरूष की हुकूमत माननी पड़ेगी।''[४] पत्नी पुष्पा का उत्तर हमें तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति और उसका विरोध बयान करता है। ''अगर मैं तुम्हारी आश्रिता हूँ, तो तुम भी मेरे आश्रित हो। मैं तुम्हारे घर में जितना काम करती हूँ उतना ही काम दूसरों के घर में करूँ, तो अपना निर्वाह कर सकती हूँ या नहीं बोलो?''[५]

प्रेमचन्द जी जो इशारा कर गए थे आज के नारी समाज में आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के बदलाव परिलक्षित होते हैं। प्रेमचन्द जी ने अपनी कहानी *'बड़े घर की बेटी'* में पुरूष पात्र *'श्री कंठ'* के मुख से नारी की प्रतिष्ठा का बखान कराया है तथा दर्शाया गया है कि अब नारी अन्याय सहन नहीं करेंगी। *'श्री कंठ'* अपने पिता से कहते है, ''जिस स्त्री की मान प्रतिष्ठा का ईश्वर के दरबार में उत्तरदाता हूँ, उसके प्रति ऐसा घोर अन्याय और पशुवत व्यवहार मुझे असहाय है।''[६] अब पुरूष खुलकर अपनी स्त्री का साथ देता है तथा उसके साथ होने वाले अन्याय का विरोध करता है। प्रेमचन्द जी की *'जेल'* कहानी में उन्होंने ग्रामीण स्त्री *'मृदुला'* में सच्ची आन्दोलनकारी नारी का जीवन यथार्थ समाज में प्रस्तुत किया है और यह भी बताया है कि ऐसी बहुत सी स्त्रियाँ देश की स्वाधीनता के लिए जेल चली गयी थीं।

धन्य है भारत की नारी। इस सन्दर्भ में *डॉ. कृष्णचन्द पाण्डेय* का कथन है, ''नारी आन्दोलन से जहाँ एक ओर देश में नारियों को जागृति पैदा हो रही थी वहाँ दूसरी ओर उनके सहयोग से चल रहे स्वाधीनता आन्दोलन को भी शक्ति मिल रही थी।''[७] *'घासवाली'* कहानी जिसमें दलित नारी *'मुलिया'* है। मुलिया में प्रेमचन्द जी ने साहसी, स्वाभिमानी, शीलगर्विता स्त्री के गुण दर्शाये है। एक दिन मुलिया घास काटने गयी थी कि युवा ठाकुर *'चैनसिंह'* ने उसका हाथ पकड लिया और बोला– ''मुलिया तुझे क्या मुझ पर जरा भी दया नहीं आती? मुलिया का वह फूल–सा खिला हुआ चेहरा ज्वाला की तरह दहक उठा। वह जरा भी नहीं डरी, जरा भी न झिझकी, झोला जमीन पर गिरा दिया और बोली मुझे छोड़ दो, नहीं मैं चिल्लाती हूँ।''[८] प्रेमचन्द जी

ने अपने उपन्यास *'कर्मभूमि'* की नायिका *'सुखदा'* को राजनैतिक व सामाजिक कार्यों में सक्रिय दिखाया है। सुखदा किसानों और मजदूरों का नेतृत्व करती है। ''सुखदा के मुख पर आत्म–गौरव की झलक आ गयी – हमें न्याय की लड़ाई लड़नी है, न्याय हमारी मदद करेगा। हम और किसी की मदद के मोहताज नहीं है।''[९] इस प्रकार प्रेमचन्द ने सुखदा के माध्यम से मध्यवर्ग की नारी की कर्मठता, न्यायप्रियता, जागरूकता व दृढ़ चरित्र का विवेचन किया है। *'गोदान'* उपन्यास में प्रेमचन्द जी के नारी पात्र में हम नारी स्वतंत्रता तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव दोनों को साथ देख सकते है। *मालती* की बहन *'सरोज'*– इसी वर्ग के पात्रों में है –''सरोज उत्तेजित होकर बोली–हम पुरूषों से सलाह नहीं माँगती, अगर वह अपने बारे में स्वतन्त्र है, तो स्त्रियाँ भी अपने विषय में स्वतंत्र है। युवतियाँ अब विवाह का पेशा नहीं बनाना चाहती है। वह केवल प्रेम के आधार पर विवाह करेंगी।''[१०] *'कर्मभूमि'* की *'मुन्नी'* में प्रारम्भ से ही आत्म–सम्मान नैतिक साहस व आत्माभिव्यक्ति की भावना थी। वह अत्याचार सहन नहीं कर सकती थी। इन्हीं गुणों के कारण वह दो आत्याचारी अंग्रेजों की हत्या कर डालती है। यह नारी पूर्णरूप से सत्याग्रह से प्रभावित थी। इसी लिए वह मृत गाय के शरीर के पास बैठकर जो सत्याग्रह करती है, उस पर महात्मा गाँधी जी के सत्याग्रह का पूरा प्रभाव लक्षित होता है। वह उपन्यास में कहती है –''अब जिसे गंडासा चलाना हो चलाए बैठी हूँ।''[११] वही *'मंगलसूत्र'* उपन्यास में भी लेखक ने नारी स्वरूप में प्रगतिशील नारी का चित्रण किया है। स्त्री पात्र *'पुष्पा'* मध्यवर्ग की प्रगतिशील नारी है जो पति के अत्याचार का मूल कारण आर्थिक कमी को बताती है। उसका विचार है कि पति की सम्पत्ति व घर पर पत्नी का पूरा अधिकार होता है। ''पुष्पा ने आवेश के साथ कहा– हम भी तो वही आत्मबल, शक्ति और कला प्राप्त करना चाहती हैं लेकिन तुम लोगों के मारे जब कुछ चलने पाए मर्यादा और आदर्श और जाने किन–किन बाहानों से हमें दबाने और हमारे उपर हुकूमत जमाए रखने की कोशिश करते रहते हो।''[१२] अत: पुष्पा का यह कथन आज की प्रगतिशील नारी का प्रतिनिधित्व करता है जो आत्मनिर्भर बन कर रहना चाहती है, पुरूष के अत्याचार सहकर उस पर निर्भर होकर नहीं।

निष्कर्ष

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि, लेखक जनता के दु:खों से अपरिचित और उदासीन रह नहीं सकता। उसमें सजग और सचेत रहकर एक जागरूक प्रहरी की भूमिका आवश्यक है। वह सचेत जीवन जीकर लोगों को सही दिशा देने एवं उनका मार्ग प्रशस्त करने में अपनी अहम् भूमिका निभायें, इस प्रकार की ही आशा उससे की जा सकती है। साहित्य में जीवन–मूल्य कल्पना– जन्य नहीं होते, बल्कि साहित्यकार के अद्‌भूत सत्य होते है, जो उसकी आत्मोपलब्धि से प्राप्त सुन्दरता, महत्ता आदि का समाज द्वारा उसको जीवन–मूल्यों के रूप में स्वीकार करते है। साहित्य से वर्तमान और भविष्य की समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। सत्साहित्य वही है जिससे समाज का सच्चा कल्याण हो। जो दृष्टि ही नहीं, अन्तर्दृष्टि भी देता है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रख कर हम कह सकते है कि प्रेमचन्द की लेखनी अन्तत: अपने सद्–प्रयासों में सफल होती है और रूढ़ मान्यताओं में जकड़ी नारी को प्रगति की राह पर ले जाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[१]कुलकर्णी, डॉ० रेवा –हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, (१९९४) पृष्ठ संख्या १ (भूमिका से)

[२]सिन्हा, डॉ० सुरेश –प्रेमचन्द और उनकी नायिकाएँ, अशोक प्रकाशन दिल्ली (१९६७), पृष्ठ संख्या १४५

[३]प्रेमचन्द –कायाकल्प, भारतीय साहित्य संग्रह (२०१०), पृष्ठ संख्या ४४४

[४]प्रेमचन्द –प्रतिज्ञा एवं मंगलसूत्र (दो उपन्यास), विश्वबुक्स प्रकाशन, बदरपुर नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या १०

[५]प्रेमचन्द –प्रतिज्ञा एवं मंगलसूत्र (दो उपन्यास), विश्वबुक्स प्रकाशन, बदरपुर नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या १०

[६]प्रेमचन्द –मानसरोवर, भाग–७, बड़े घर की बेटी, सुमित्रा प्रकाशन, इलाहाबाद (२०११), पृष्ठ संख्या ८७

[७]चन्द्र, डॉ० कृष्ण –प्रेमचन्द के जीवन–दर्शन के विद्यायक तत्व, रचना प्रकाशन खुल्दाबाद, इलाहाबाद (१९७०), पृष्ठ संख्या १६०

[८]प्रेमचन्द –मासरोवर, भाग–१, घासवाली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (२०१२), पृष्ठ संख्या २४८

[९]प्रेमचन्द –कर्मभूमि, मनोज पब्लिकेशन, चाँदनी चौक, दिल्ली (२००३), पृष्ठ संख्या १८२

[१०]प्रेमचन्द –गोदान, मनोज पब्लिकेशन, चाँदनी चौक, दिल्ली (२००४), पृष्ठ संख्या १५९

[११]प्रेमचन्द –कर्मभूमि, मनोज पब्लिकेशन, चाँदनी चौक, दिल्ली (२००३), पृष्ठ संख्या ११८

[१२]प्रेमचन्द –प्रतिज्ञा एवं मंगलसूत्र, विश्वबुक्स प्रकाशन बदरपुर, नई दिल्ली (२००७), पृष्ठ संख्या १२४

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2020) **14,6-10**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 मार्च 2018

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी कविता का प्रमुख स्वर

डॉ० प्रभा दीक्षित*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *इक्कीसवीं सदी में हिन्दी कविता का प्रमुख स्वर* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *प्रभा दीक्षित* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

यह भूमण्डलीकरण का दौर है जिसमें हर वस्तु, हर कला, साहित्य, कविता, संगीत, खेल सभी कुछ बाजार का एक 'माल' या प्रोडक्ट बन चुका है। यह सदी १९ सदी की अक्टूबर क्रांति और वामपंथ के पराभव को पार कर आई है। यह पूंजीवाद के उभार का चरमबिन्दु छूने को आतुर है। इसमें उत्तर आधुनिक, उत्तर संरचनावादी और उत्तर औपनिवेशिक विमर्शो को भी पार कर लिया है। यह साहित्य में एक ओर स्त्री, दलित, आदिवासी, किन्नर जैसे हाशियें में पड़े वर्ग के गहन विमर्शो की हलचलों से भरा है तो दूसरी ओर साम्प्रदायिक उन्मादों एवं धार्मिक पुनरूत्थान के दृश्यों से भी लहूलुहान है, जहाँ मनुष्यता और गरीबों की लाश पर राम जन्मभूमि विवाद के दृश्य भी दिखाई दे सकते हैं। यह २१वीं शदी में अठारहवीं सदी की अन्ध–आस्थाओं के सम्मिश्रण का दौर है। यह भारत में 'मोदी–युग' के शंखनाद का दौर है जिसमें फाँसीवाद द्वारा दूसरी विचारधाराओं व प्रगतिशील संभावनाओं को नेस्तनाबूद करके एक पिछड़ी साम्प्रदायिक विचारधारा थोपे जाने का खतरा मंडरा रहा है। सह संचार क्रांति का दौर है, जहाँ सोशल मीडिया में इण्टरनेट के माध्यम से 'फेसबुक' और व्हाटसेफ में अनेकानेक कवि, लेखक और कथाकार प्रतिदिन अपनी अभिव्यक्तियाँ साझा कर रहे हैं जिसमें नवोदित रचनाकार अधिक मुखर हैं। जो साहित्य का ककहरा भी नहीं जानते वे भी स्वयं को महान लेखक समझने का भ्रम पाले हुए हैं, बिना यह जाने कि एक साहित्यकार या कवि होना एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। एक साहित्यकार या कवि को अपने शब्दों के लिये बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ सकती है। उसे सुकरात की भांति जहर का प्याला पीना पड़ सकता है। पाश की तरह मृत्यु को असमय गले लगाना पड़ सकता है या जीते जी निराला की भांति पागल होना पड़ सकता है या मुक्तिबोध की भांति अवसादग्रस्त हो मेनेनजाइटिस अर्थात् मस्तिष्क ज्वर का शिकार होना पड़ सकता है। नागार्जुन की भांति यायावर जिन्दगी बितानी पड़ सकती है। त्रिलोचन और 'शील' की भांति फटेहाल रहना पड़ सकती है। आज भी इन कालजयी कवियों की परम्परा का निर्वहन करने वाले कवियों की एक लम्बी कतार देखी जा सकती है किन्तु जिनमें से अधिकांश का सोशल मीडिया में जिक्र तक नहीं है।

* प्राचार्या, श्री स्वामी नागाजी बालिका डिग्री कॉलेज, भरूआ-सुमेरपुर, हमीरपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०२०, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

'कला को जीवन का पर्याय' या 'साहित्य को समाज का दर्पण' ही नहीं उसको बदलने का एक सशक्त साधन मानने वाले प्रतिबद्ध कवियों की इस कतार में मुक्तिबोध, नागार्जन, शमशेर, त्रिलोचन, शील, कुवर नारायण, अशोक बाजपेई, लीलाधर जगूड़ी, विष्णु खरे, मलय, प्रयाग शुक्ल, ज्ञानेन्द्रपति, बदरीनारायण, नरेन्द्र जैन, देवी प्रसाद मिश्रा, कुमार अम्बुज, ऋतुराज, एकांत श्रीवास्तव, अरूण कमल, असद जैदी, अजय सिंह, केदारनाथ सिंह, विद्रोही, कमल किशोर 'श्रमिक', अदम गोंडवी, रामकुमार कृषक, विनय मिश्र, प्रणय कृष्ण, बल्ली सिंह चीमा, मंगलेश डबराल, वीरेन्द्र डंगवाल, विनोद कुमार शुक्ल, पवनकरण, पंकज चतुर्वेदी, दिनेश कुमार शुक्ल, कात्यायनी, अनामिका, सविता सिंह, शुभा, निर्मला पूतुल, नीलेश रघुवंशी, अंजना संधीर, प्रभा दीक्षित आदि अनेक कवि एवं कवयित्रियाँ कविता की मशाल थामें जन–मन में प्रतिरोध के स्वर अंकुरित कर रही हैं; और कविता के माध्यम से ये सब अपने समय का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत कर रही हैं।

''सही रचनाशीलता अपने समय में सार्थक होने के लिए किसी प्रकार की हदबंदी को स्वीकार नहीं करती है और समय के सच का हाथ पकड़कर चलती है। उसे देखने के लिये हमें अपने समय में अपनी भूमिका और साथ ही दृष्टि को भी बदलना पड़ता है। समय को पीठ देकर खड़ा आदमी उसके चेहरे को पहचानने का दावा नहीं कर सकता।''[१]

इस कथन का आशय यही है कि लेखन एक सचेत सामाजिक कर्म है, जिसे प्रतिबद्ध लेखक पूरी जिम्मेदारी से निभाता है।

''२१वीं सदी की कविता बीसवीं सदी पर होते हुए पटाक्षेप को देख रही है। वह देख रही है कि यूरोपीय जागरण का तीन सौ साल पुरानी तमाम धारणायें धूल चाट रहीं हैं। रक्तरंजित आकांक्षाओं और उन्माद के बीच नए–नए शब्द, सिद्धान्त और प्रति–पादन, रोज जन्म ले रहे हैं और रोज मर रहे हैं। केन्द्र सरक रहे हैं। राष्ट्र, प्रगति, विज्ञान और पूँजी तथा तर्क के पुराने मिथकों का पानी उतर रहा है नए मिथक गढ़े जा रहे हैं। भविष्यवाद के इन मिथको के पीछे छिपी हिंसा, वर्चस्व, और शोषण की शक्लों को कविता पहले से ज्यादा साफ देख लेती है।[२]

धूमिल ने कविता को भाषा में आदमी होने की तमीज कहा है। वे कहते हैं– *लोहे का स्वाद/ लोहार से मत पूछो। उस घोड़े से पूछो/ जिसके मुँह में लगाम है।*[३] (कल सुनना मुझे)। उनकी इस कविता में दलित अस्मितावादी विमर्श की अनुगूँज देखी जा सकती है। जो आज की कविता का एक प्रमुख स्वर है।

आज का समय और उसका यथार्थ इतना भ्रामक और जटिल है कि आम जनता उसे समझने में धोखा खा सकती है। आज का कवि (सुधांशु मालवीय) ''चीजें उलझ गई हैं बेतरह'' शीर्षक कविता में लिखते हैं :

पक्ष में उलझ गया है विपक्ष,/ लाल से उलझ गया है/ लाल के उबाल को रोकने वाला लाल। राजनीति से उलझ गया है अपराध/ चुनाव से पूंजी, बाहुबल/ कविता लेखन और कला से/ सम्मान पुरस्कार वजीफा।[४]

पूँजीवाद विशेष रूप से अमरीकी पूंजीवाद द्वारा अफ्रीकी और एशियाई मुल्कों का आर्थिक शोषण भूमण्डलीकरण की नीति के तहत बाजारवाद के विस्तार के माध्यम से किया जा रहा है। इस बात को इन देशों के शासक जानते हैं फिर भी वे मजबूर हैं या कमीशन देकर उनका मुंह बंद कर दिया गया है। यह भूमण्डलीयकरण गरीब राष्ट्रों की गरीब जनता का शोषण और अपने पूँजीपति आकाओं की खुशहाली पर टिका हुआ है। २१वीं सदी की कविता इनके मनसूबों को बेनकाब कर रही है। यह अलग बात है कि समाज में एक कवि और कविता का असर कितना है। जगदीश चन्द्र 'चूहे' शीर्षक कविता में कहते हैं :

अमेरिका के सटोरिये/ पूँजीवाद और भोगवादी संस्कृति के/ अलंबरदार/ पेटागन के सैनिक आका/ और मुक्त बाजार के मगरमच्छ/ घुस रहे हैं एशियाई मुल्को में/ जैसे अनाज के गोदाम में चूहे। और चूहे कुतर रहें है। अक्टूबर क्रांति के दस्तावेज/ राष्ट्रीय सम्मान/ स्वाधीनता/समानता/ सांस्कृतिक मूल्यों का/ कुल मेल मिलाप/ और भाईचारे का संवाद।[५]

इसी प्रकार अरूण–कमल जी संचार क्रांति, भूमण्डलीकरण और मुक्त व्यापार द्वारा विदेशी कम्पनियों के आगमन से ठगे देशवासियों का हाल 'सबूत' शीर्षक कविता में इस प्रकार कहते हैं :

आ रही है जब्र की मिट्टी झाड़ती ईस्ट इंडिया कंपनी/ डलहौजी के घोड़ों की टाप है रोड पर/ टॉप कनपट्टी पर/ और मेरा चेहरा फूटा हुआ कम्प्यूटर का दाना/ अपने ही घर में किराएदार हम।[६]

एक ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हमें २०० वर्षों तक गुलाम बनाए रखा। आज इतनी बहु–राष्ट्रीय कम्पनियाँ आयेंगी तो देश का क्या होगा? यह प्रश्न कवियों लेखकों द्वारा बड़ी सख्ती से उठाया गया परन्तु हमारे हुक्मरानों को कोई फर्क नहीं पड़ता। इन कम्पनियों ने राष्ट्र और राज्य की लोक कल्याणकारी भूमिका को ही खत्म कर दिया है।

केदारनाथ सिंह इस दौर के एक महत्वपूर्ण कवि हुए हैं, जो सर्वथा नए प्रतीको के द्वारा बात कहते हैं 'फर्क नहीं पड़ता' शीर्षक कविता में इस बहु–स्तरीय समय को कितने धारदार ढंग से कहते हैं :

मेरे युग का मुहावरा है/ फर्क नही पड़ता/ मै बहस शुरू करूँ/ पर चीजें ऐसे दौर से गुजर रही हैं/ कि सामने की मेज को/ सीधे मेज कहना/ उसे वहाँ से उठाकर/ अज्ञात अराधियों के बीच में रख देना है/ और यह समय है/ जब रक्त की शिरा शरीर से कटकर/ अलग हो जाती हैं। और यह समय है जब/ मेरे जूते के अन्दर की एक नन्ही सी कील/ तारों को गड़ने लगती है।[७]

चौकाने वाले अंदाज में वे अपसंस्कृति और राजनीतिक शोषण दोनों को 'हाकर' शीर्षक कविता में कहते हैं :

इस शहर में/ हर आदमी छिपा रहा है/ अपनी प्रेमिका का नाम/ सिवा उस हॉकर के/ जो सड़क पर चिल्ला रहा है वियतनाम। वियतनाम।[८]

२१वीं सदी की कविता का मुख्य स्वर भूमण्डलीकरण द्वारा पूँजीवादी शोषण और प्रतिरोध को उद्घाटित करना है। इसीलिए सत्येन्द्र कुमार जी 'मेरा गाँव' शीर्षक कविता में गाँवों में उठने वाले विडोही स्वरों को राष्ट्र देते हैं :

मेरे गाँव के चेहरे से उतर रही थकान/ मिट रही है निराशा। नए गीतों की तैयारी में रची जा रही हैं धुने/ मेरी गाँव की छोटी सी नदी में आकर मिल रहा है/ पृथ्वी पर फैली कई नदियों का पानी। मेरे गाँव के झुरमुट से/ आ रही है कितने देशों की चिड़ियों की आवाजें/ कितना कुछ बदल रहा है मेरे गाँव मे/ मिल रहे हैं कितने स्वर एक स्वर में/ केवल बाजार की भाषा में ही नहीं/ बदल रहे हैं गाँव।[९]

भूमण्डलीकरण, मुक्त बाजार के शोषण का सबसे बड़ा हथियार है राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता। ''फूट डालो और शासन करो'' इनका विजय–मंत्र है। युवा कवि पंकज चतुर्वेदी इसे निम्न शब्दों में व्यक्त करते हैं :

हमारे हुक्मरान/ पाकिस्तान से प्रेम/ एकांत मे जताते हैं/ और झगड़ा सार्वजनिक करते हैं/ ताकि लोगों को लगे झगड़ा कर्त्तव्य है/ और प्यार का इज़हार/ मानवीय दुर्बलता।[१०]

इसी प्रकार मोदी उर्फ भाजपा की अप्रत्याशित जीत पर २१वीं सदी के कवि पंकज चतुर्वेदी के शब्दों में देखें :

चाँद कहता था/ आज शाम/ अपने सारे संताप/ घुला दो/ मेरी शीतलता में/ मेरी छाँव में/ सो रहो। मगर मैने कहा/ आऊँगा फिर कभी/ अभी उद्विग्न है हृदय/ आततायी की विजयदुन्दुभी/ सुन पड़ती है/ और मेरा देश/ उसके छल से अभिभूत/ उसकी हिंसात्मकता पर मुग्ध/ किन्तु अपने भवितव्य से अनजान है।[११]

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि २१वीं सदी की कविता में पीड़ितों, वंचितो, दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों, किन्नरों के विमर्श भी केन्द्र में हैं। इनमें कात्यायनी, अनामिका, ममता कालिया, गगन गिल, सुधा अरोड़ा, राजी सेठ, शुभा, कविता कृष्णन, सविता सिंह, निर्मला पूतुल, रमणिका गुप्ता, प्रभा दीक्षित, निर्मला गर्ग, क्षमा कौल, नीलेश रघुवंशी, रति सक्सेना, अर्चना वर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, कमल कुमार, जया जादवानी, अरूण कमल, पवनकरण, आशुतोष दुबे, दिनेश शुक्ल आदि प्रमुख है।

स्त्री विमर्श महिला रचनाकारों का प्रमुख विषय रहा है। जहाँ निराला ''वह तोड़ती पत्थर, देखा उसे मैंने/ इलाहाबाद के पथ पर'' लिखकर श्रमजीवी मजदूर स्त्री की गरिमामय छवि उकेरते हैं, नागार्जुन 'विज्ञापन सुन्दरी' की विवशता को अपना वात्सल्य देते हैं, वहीं कात्यायनी दुर्ग द्वार में दस्तक देते हुए स्त्री को इंसानी गरिमा के साथ जीने देना चाहती हैं। स्त्री की परम्परागत दासत्व भरी भूमिका को आधुनिक पुरूष भी हेय दृष्टि से देखे है– ''नहीं हो सकता तेरा भला'' नामक कविता में कात्यायनी लिखती हैं :

हे ईश्वर। मुझे ऐसी औरत क्यों नहीं दी/ जिसका कुछ तो भला किया जा सकता/ यह औरत तो बस भात राँध सकती है/ और बच्चे जन सकती है। इसे भला कैसे मुक्त किया जा सकता है?[१२]

अनामिका स्त्री की परम्परागत भूमिका को अपनी अनूठी स्त्री दृष्टि से देखती है– एक गृहणी के अकेले घर में किये जाने वाले कार्यों की कलात्मक प्रस्तुति देखें :

भायं–भायं बजाता है हारमोनियम/ मेरा खाली घर/ इस खाली समय में बहुत काम हैं/ अभी मुझे घर की उतरनों का/ अनुवाद करना होगा जल की भाषा में/ फिर झूठी प्लेटो का/ किसी श्वेत पुष्प की पंखुड़ियों में/ अनुवाद करूँगी मैं/ फिर थोड़ी देर खड़ी सोचूँगी/ कि एक

झाग भरे सिंक का/ क्या मैं कभी कर सकूँगी/ किसी राग में अनुवाद/ दर–असल इस पूरे घर का/ किसी दूसरी भाषा में/ अनुवाद करना चाहती हूँ मैं?/ पर यह भाषा/ मुझे मिलेगी कहाँ?[१३]

रसोई में भोजन बनाना स्त्री का दिनचर्या का प्रमुख अंग है। रोटी बेलने सेकने का इस प्रक्रिया में वह किस–किस मानसिक दशा से गुजरती है, देखें 'अनामिका' के ही शब्दों में :

वह रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी/ ज्वालामुखी बेलते हैं पहाड़/ भूचाल बेलते हैं घर/ सन्नाटे बेलते हैं भाटे समन्दर।

× × ×

और वह अपने ही वजूद की आँच के आगे/ औचक हड़बड़ी में। खुद को ही सानती। खुद को ही गूँथती हुई बार–बार खुश है/ कि वह रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी।[१४]

सविता सिंह उन गिनी चुनी कवियित्रियों में जो उग्र नारीवाद की समर्थक हैं। वे एक स्वतंत्र, आत्मनिर्भर स्त्री की परिकल्पना करती है जो पुरूष की मुखापेक्षी नहीं है।

मै किसी की औरत नहीं हूँ/ मैं अपनी औरत हूँ/ अपना खाती हूँ/ जब भी चाहती हूँ तब खाती हूँ/ और मेरा परमेश्वर कोई नही।[१५]

पितृ–सत्तात्मक समाज स्त्री की स्वतन्त्र आत्मनिर्भर छवि को बर्दाश्त नहीं कर पाता तभी उस पर तेजाब फेंककर या बलात्कार कर अपना वर्चस्व सिद्ध करता है जिसके आधीन स्त्री जिन्दगी भर रोती घुटती रहे। शुभा व्यंग्य करती हैं :

बलात्कारी न भी भाग चुके हों, तो भी/ कैमरा फिक्स है रोती हुई औरत पर/ यह हमारा प्रिय सांस्कृतिक चित्र है/ स्त्री के आँसू हमें वैसे ही प्रिय हैं/ जैसे अपनी वीरता और पौरूष।[१६]

आदिवासी संथाली कवयित्री 'निर्मला पूतुल' भी प्रश्न करती हैं :

तो फिर क्या जानते हो तुम/ रसोई और बिस्तर के गणित से परे/ एक स्त्री के बारे में।[१७]

स्त्री को महज एक देह समझे जाने पर हर स्त्री को ऐतराज होता है। वह भी इंसान है मात्र एक शरीर नहीं। आदिवासी स्त्री अपनी अस्मिता के साथ–साथ भुखमरी, गरीबी और विस्थापन का दर्द भी झेलती है। उसे कुछ महीनों, दिनों में अपना ठिकाना बदलना पड़ता है। जो स्त्री के लिये अधिक पीड़ादायक होता है, निर्मला पूतुल कहती हैं :

धरती के इस छोर से उस छोर तक/ मुट्ठी भर सवाल लिये मैं/ दौड़ती–हाँफती भागती/ तलाश रही हूँ सदियों से/ निरन्तरें.... अपनी जमीन/ अपना घर। अपने होने का अर्थ।[१८]

श्री महाश्वेता देवी और रमणिका गुप्ता जी ने भी जीवन भर आदिवासियों, दलितों और प्रवंचित वर्ग के लिये उपन्यास, कहानियाँ और कविताएँ ही नहीं लिखीं, उनके बीच में रहकर उनके लिये काम भी किया है जो प्राय: पुरूष साहित्यकार भी नही कर सके हैं। हाल ही में दिवंगत हुई रमणिका जी अपनी अदम्य जिजीविषा संघर्ष व जुझारूपन के लिये याद की जाएंगी। देखे उन्हीं के शब्दों में :

मैंने उड़ती हुई हवा से कहा/ तनिक रूको और सुनो/ अपने प्राणों में बंधी घंटियों की ध्वनि/ जो पैदा करती है, हर झोके के साथ/ एक नया गीत जिन्दगी की/ जिजीविषा, प्राण और साँस/ शेष है धरती, आकाश और क्षितिज/ और हवा लौट आई। श्वास बनकर और/ धड़कने लगी मेरे दिल में।[१९]

स्त्री की स्वाधीनता, अपने विषय में निर्णय लेने के अधिकार को रमणिकाजी स्त्री मुक्ति की पहली शर्त मानती है। ''वर माला रौंद दूँगी'' नामक कविता में वे कहती है :

वर माला रौंद दूँगी/ पर नही पहनाऊँगी/ तुम्हारी सजी हुई कतार मे से किसी को/ क्योंकि इस व्यवस्था में/ 'चयन' का मेरा अधिकार नहीं है।[२०]

आदिवासियों के हक के लिये अनेक एक्टिविस्ट और वामपंथी बुद्धिजीवी संघर्ष करते रहे हैं। दर–असल पूँजीवादियों की सबसे बड़ी मार आदिवासियों, मजदूरों पर ही पड़ती है। विनोद कुमार शुक्ल ने बहुत पहले ही लिखा हैं :

जो प्रकृति के सबसे निकट हैं/ जंगल उनका है/ आदिवासी जंगल के सबसे निकट है/ इसलिये जंगल उन्ही का है/ अब उनके बेदखल होने का समय है। यह वही समय है। जब आकाश से पहला/ एक तारा बेदखल होगा। जब एक पेड़ से। पक्षी बेदखल होगा/ आकाश से चाँदनी बेदखल होगी/ जब जंगल से आदिवासी बेदखल होंगे/ जब कविता से शब्द बेदखल होंगे।[२१]

पूँजीवाद के इस सर्वग्राही विकास ने मनुष्य ही नही हमारे पर्यावरण के लिये भी खतरा पैदा कर दिया है कंक्रीट के बढ़ते जंगल, पेड़ों की अधाधुंध कटाई, नदियों का प्रदूषण, भू–जल का अंधाधुंध दोहन, गिरता जल स्तर, ग्लोबल वार्मिंग, बारूद के ढ़ेर पर बैठी दुनिया, युद्ध, परमाणु परीक्षण आदि समस्यायें भी पूँजीवादी दोहन के कारण ही जन्मी हैं और आज विकराल रूप ले चुकी हैं। २१वीं सदी की कविता इन समस्याओं को नजरंदाज नहीं करती, बल्कि अपने समय और समाज के हर तीखे और जलते सवालों को पूरी तीव्रता से उठाती है और उनका सामना करने के लिये शिद्दत से प्रयास करती है। युद्ध और परमाणु विस्फोट के सवाल को जनकवि कमल किशोर 'श्रमिक' ने बड़े ही कलात्मक ढंग से कहा है– ''ये आसमान परिन्दों के लिये है या मिसाइल के लिए/ देखिये 'श्रमिक' के ऐतराज कहाँ तक पहुँचे।[२२]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी की कविता में अनेक धारायें, विचारधारायें प्रवहमान हैं किन्तु इक्कीसवीं सदी की कविता शोषित वंचित और पीड़ित आम जनता के पक्ष में तनकर खड़ी है। यद्यपि भूमण्डलीकरण के अपसांस्कृतिक माहौल में कविता की सच्ची धारदार आवाज को अनेक प्रकार के षडयन्त्रों, उपेक्षाओं, व दमन चक्रों के द्वारा दबाने की कोशिश की जा रही है फिर भी हमारी सदी के जनपक्षधर कवि कविता और बुद्धिजीवी सच्चाई की इस मशाल को कभी बुझने नही देगें। अंत में मैं जनकवि 'श्रमिक' के एक शेर के माध्यम से बात समाप्त करती हूँ– ''आने वाली सदी में महकेंगे अंगारो के फूल 'श्रमिक' दिल की आग को अपनी सदी में बो गया।''[२३]

संदर्भ–ग्रन्थ

[१]कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह –(आलेख) 'गीत रचना की जनवादी पृष्ठभूमि', उद्घृत; अलाव पत्रिका –२००२, पृष्ठ संख्या १३

[२]शैलेन्द्र चौहान –(आलेख) ''कविता तो दादागीरी से नहीं उपजती'', उद्घृत; अलाव पत्रिका, अंक २००२, पृष्ठ संख्या ४५

[३]*धुमिल कविता कल सुनना मुझे उद्घृत*– संसद से सड़क तक।

[४]सुधांशु मालवीय– कविता 'चीजें उलझ गई हैं बेतरह'।

[५]जगदीश चन्द्र– कविता चूहे, अलाव –२००२, पृष्ठ संख्या ७१

[६]अरूण कमल– सबूत (कविता) उद्घृत, अलाव पत्रिका –२००२, पृष्ठ संख्या ७५

[७]केदारनाथ सिंह– कविता 'फर्क नहीं पड़ता। प्रतिनिध कवितायें, पृष्ठ सख्या ८६–८७, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली सं० २०१८

[८]केदारनाथ सिंह – हॉकर (कविता), पृष्ठ संख्या ८७, वही

[९]सत्येन्द्र कुमार– मेरा गाँव, उद्धृत अलाव –२००२, पृष्ठ संख्या २७

[१०]पंकज चतुर्वेदी– हमारे हुक्मरान इण्टरनेट।

[११]पंकज चतुर्वेदी– मेरा देश– इण्टरनेट।

[१२]कात्यायनी– नहीं हो सकता तेरा भला।

[१३]अनामिका– कविता में औरत– इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण –२००४, पृष्ठ संख्या ५१

[१४]अनामिका– वही, पृष्ठ संख्या ५२

[१५]सविता सिंह– कविता 'मैं किसकी औरत हूँ?'।

[१६]शुभा – कविता गौरवमयी संस्कृति।

[१७]निर्मला पूतुल– कविता संग्रह नगाड़े से बज रहे हैं शब्द।

[१८]निर्मला पूतुल– वही

[१९]रमणिका गुप्ता– इलेक्ट्रॉनिक मीडिया।

[२०]रमणिका गुप्ता– 'वरमाला रौंद दूँगी।

[२१]विनोद कुमार शुक्ल– आदिवासी समाज हक और हकीकत, अनुराधा प्रकाशन, नई दिल्ली –२०१८, पृष्ठ

[२२]कमल किशोर श्रमिक– श्रमिक की गज़लें, युगप्रभा प्रकाशन, कानपुर –२०००, पृष्ठ संख्या ३९

[२३]कमल किशोर श्रमिक– श्रमिक की गज़लें, वही, पृष्ठ संख्या ६४

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2020) **14,11-15**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 अप्रैल 2018

बालकों के विकास में पोषण एवं स्वास्थ्य का प्रभाव

अर्चना चौधरी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *बालकों के विकास में पोषण एवं स्वास्थ्य का प्रभाव* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अर्चना चौधरी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

जिस प्रकार बालक के विकास के लिए प्रकृति की भूमिका आवश्यक है, उसी प्रकार बालक के विकास के लिए पोषण का भी अपना ही महत्व है। बालक को जब अच्छा पोषण प्राप्त होता है, तो शरीर हृष्ट-पुष्ठ व विकार रहित, रोग रहित होकर विकास अनवरत तेज गति से होता चला जाता है। इसके अभाव में विकास अवरूद्ध हो जाता है अथवा बीमार हो सकता है। इसलिए शारीरिक विकास के लिए पोषण का भी महत्व है।

बालक का स्वास्थ्य माता-पिता के स्वास्थ्य तथा पालन-पोषण पर निर्भर करता है। शिशु का उचित पालन-पोषण उसके स्वास्थ्य को स्थायित्व प्रदान करता है। पालन पोषण का सबसे प्रमुख भाग बालक का आहार है। बालक का उत्तम स्वास्थ्य उसके आहार पर निर्भर करता है, क्योंकि उचित आहार से बालक की शरीरिक वृद्धि तथा विकास होता है। बालक का स्वास्थ्य सन्तुलित आहार से ही उत्तम अवस्था में रहता है। बालक किसी-न-किसी रूप में बराबर क्रिया करता है। इसमें शान्ति होती है और उस शक्ति की पूर्ति आहार से होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि माता, बालक के आहार की उचित व्यवस्था करें।

छोटे बच्चों का मुख्य आहार दूध ही होता है, परन्तु जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता है, दूध रूपी आहार उसके लिए अपर्याप्त होने लगता है। इसके साथ उसे किसी ठोस आहार की आवश्यकता पड़ती है। बालक के भोजन में निम्नलिखित पौष्टिक तत्त्वों का होना आवश्यक है, जैसे विटामिन-डी। इस विटामिन से बालक का विकास होता है। इससे कैल्शियम तथा फॉस्फोरस प्राप्त होता है। यह सूर्य की किरणों के सेवन से प्राप्त होता है। सूर्य कि किरणें त्वचा में इस विटामिन की उत्पत्ति करती है। इसलिए बच्चों को कुछ समय के लिए धूप में रखना चाहिए। बड़े होने पर बच्चों को विटामिन ए युक्त पदार्थों की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। यह माता के दूध से प्राप्त होता है, परन्तु बड़े होने पर इस मात्रा अत्यधिक आवश्यकता होती है, इसलिए बच्चे को मछली का तेल एवं अण्डा देना चाहिए। विटामिन डी के अभाव में बच्चे को सूखा रोग, जुकाम, खाँसी तथा आँख की बीमारियाँ आदि होने का भय रहता है।

* असि० प्रोफेसर, गृह-विज्ञान विभाग, जे0डी0वी0एम0पी0जी0 कॉलेज, कानपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०२०, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

विटामिन सी से बच्चों के मसूड़े बनते हैं। यह मुसम्मी व सन्तरे आदि में मिलता है। इसके अभाव में स्कर्वी नामक रोग हो जाता है। सभी फलों के रस में विटामिन्स पाये जाते हैं। इसलिए बालकों को फलों का रस देना चाहिए।

बालकों के रक्त को स्वस्थ व चमकीला बनाये रखने के लिए लौहयुक्त पदार्थ देने चाहिए। इनकी मात्रा अण्डे व हरी सब्जियों में पाई जाती है। ७वें महीने में के बाद बालक को ठोस आहार देना चाहिए, क्योंकि अब इसे प्रोटीन की अधिक आवश्यकता रहती है। वैसे प्रोटीन कई पदार्थों में पाया जाता है, परन्तु बालक की पाचन शक्ति को ध्यान में रखते हुए उसे धीरे-धीरे दलिया, दाल, चावल, सूजी व खीर आदि भी देने चाहिए।[१]

पोषण क्या है इसका उत्तर हर व्यक्ति अपने अनुसार बताता है। डॉक्टर के अनुसार पोषण वह है जिससे रोगी को अधिक आराम प्राप्त हो सके। अतः वह आहार तालिका में इस प्रकार के भोज्य पदार्थों का समावेश करेगा जिससे रोगी शीघ्र अच्छा हो सके और उसे आराम मिल सके।

विभिन्न विद्वानों ने पोषण की परिभाषा इस प्रकार से किया है -

१. *यूकिन के अनुसार* -पोषण मनुष्य एवं उसके भोजन के बीच स्थापित सम्बन्ध है तथा यह सम्बन्ध उसके मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, शरीरात्मक तथा जैविकीय तथ्यों पर आधारित है।

२. *पोषणशास्त्री के अनुसार* -पोषण शरीर में होने वाली विभिन्न क्रियाओं का तालमेल है, जिनके द्वारा जीवित प्राणी ऐसे पदार्थों को ग्रहण करते हैं जो शरीर के विभिन्न कार्यों को नियन्त्रित करते हैं एवं शारीरिक टूट-फूट की मरम्मत करते हैं।

पोषण के प्रकार[२]

पोषण दो प्रकार का होता है -१. पर्याप्त पोषण एवं २. अपर्याप्त पोषण।

१. *पर्याप्त पोषण;* पर्याप्त पोषण एवं अनुकूलतम पोषण का अर्थ प्रायः एक ही लगाया जाता है। *डॉ० मैकलेस्टर ने* अनुकूलतम भोजन की परिभाषा इस प्रकार दी है -वह आहार जो स्वस्थ तथा अस्वस्थ दोनों ही दशाओं में मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, किन्तु व्यक्ति के लिए आवश्यकता से अधिक कैलोरी प्रदान नहीं करता। जहाँ तक सम्भव हो वह पौष्टिक आवश्यकताओं के लिए आवश्यक भोजन तत्त्व जैसे प्रोटीन विटामिन निर्धारित आवश्यकता से अधिक मात्रा में प्रदान करता है।

डॉ० मैकलेस्टर ने अपनी भोजन की परिभाषा में कैल्शियम नहीं जोड़ा है जिसका रहना पोषणशास्त्रियों के अनुसार अत्यन्त आवश्यक है। पर्याप्त पोषण प्रत्येक पोषक तत्व की न्यूनतम आवश्यकताओं के साथ साथ शरीर की सुरक्षा तथा स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उचित मात्रा में पोषण प्रदान करना है।

२. *अपर्याप्त पोषण;* भोजन में पोषक तत्त्वों की मात्रा शरीर की आवश्यकतानुसार ही होनी चाहिए। भोज्य तत्व मात्रा एवं गुणों की दृष्टि से शरीर की आवश्यकता के अनुपात में ठींक नहीं रहते या उनमें से किसी एक तत्व की कमी रह जाती है तो उसे अपर्याप्त पोषण कहते हैं। अपर्याप्त पोषण से शरीर का उचित विकास तथा वृद्धि नहीं हो पाती है। इसके परिणामस्वरूप भोज्य तत्त्वों की कमी से हीनता जनित रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। स्कर्वी, बेरी-बेरी रोग, रक्तहीनता, क्वाशियरकर, घेंघा रोग अपर्याप्त पोषण के कारण ही होता है। शरीर की दोषपर्ण आकृति अस्थियों का विकृत होना, दबी छाती, अविकसित दाँत ढीला-ढाला शरीर आदि लक्षण अपर्याप्त पोषण के ही हैं।

पोषण सुरक्षा पर राज्य की संवैधानिक बाध्यतायें[३]

भारत के संविधान का अनुच्छेद-२१ हर एक के लिए जीवन और स्वातंत्र्यता का मौलिक अधिकार सुनिश्चित करता है। इस अनुच्छेद के तहत् उपलब्ध जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार में भोजन का अधिकार सम्मिलित है। वहीं

संविधान का अनुच्छेद -४७ कहता है कि लोगों के पोषण और जीवन के स्तर को उठाने के साथ ही जनस्वास्थ्य को बेहतर बनाना राज्य की प्राथमिक जिम्मेदारी है।

१- मानव अधिकारों पर जारी अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा-पत्र (१९४९) की धारा-२५ हर व्यक्ति के लिए पर्याप्त भोजन के अधिकार को मान्यता देती है।

२- आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय सहमति दस्तावेज की धारा-११(१९६६) और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की समिति हर व्यक्ति को भूख से युक्त रखने के संदर्भ में राज्य की जिम्मेदारियों की विस्तार से व्याख्या करती है।

३- इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ के बाल अधिकार समझौते (धारा-२७१ और २७३) और महिलाओं के खिलाफ होने वाले हर तरह के भेदभाव की समाप्ति के लिए सम्मेलन (सीडा) के घोषणा-पत्र (धारा-१२) महिलाओं और बच्चों की खाद्य-पोषण सुरक्षा के बारे में राज्य की जिम्मेदारी को स्पष्ट करते हैं।

राज्य सार्वजनिक वितरण प्रणाली के जरिए कमजोर वर्ग के लोगों को सस्ती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराता है। इसके साथ ही आईसीडीएस और मिड डे मील के जरिए बालकों को पोषण सुरक्षा प्रदान की जा रही है। बावजूद इसके प्रदेश में स्वास्थ्य मानकों के नजरिए से स्वास्थ्य की तस्वीर बहुत अच्छी नहीं है। खासकर बच्चों के संदर्भ में देखें तो ६० प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं।

बालकों में कुपोषण[४]

देश में बच्चों (बालकों) की आधी आबादी कुपोषण का शिकार है। २४ प्रतिशत बच्चे गम्भीर कुपोषण का शिकार हैं। मध्य प्रदेश में हाल ही में राष्ट्रीय पोषण संस्थान हैदराबाद ने अध्ययन किया है। इस अध्ययन में पाया गया कि मध्यप्रदेश में ग्रामीण क्षेत्र में ५१९ प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। एनएफएचएस के तीसरे सर्वे में यहाँ लगभग १० प्रतिशत कुपोषण कम पाया गया है। यह सुखद संकेत हो सकता है, लेकिन चुनौती भी है, क्योंकि प्रदेश के आधे से अधिक बच्चे कुपोषण के कारण अपनी जिंदगी से संघर्ष कर रहे हैं।

कुपोषण के कारण[५]

१- *अपर्याप्त भोजन;* जहाँ बालकों को उसकी शारीरिक आवश्यकतानुसार भोजन नहीं मिलता है तभी उसका कुपोषण होने लगता है।

२- *आवश्यकतानुसार भोजन न मिलना;* प्रत्येक बालकों को उसकी शारीरिक आवश्यकतानुसार भोजन मिलना चाहिए। आवश्यकता से कम भोजन मिलना भी कुपोषण का कारण बनता है।

३- *खराब भोजन;* कुछ भोजन ऐसे होते हैं, जो खाने में बहुत स्वादिष्ट लगते हैं, परन्तु अपचनशील होते हैं जैसे -घी व मसाले। लगातार ऐसा भोजन करने से उसकी पाचनशक्ति खराब हो जाती है और उसका कुपोषण होने लगता है।

४- *आहार में पोषक तत्त्वों की कमी;* जब भोजन में लगातार पोषक तत्व जैसे- प्रोटीन, वसा, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट्स, खनिज लवण तथा जल की मात्रा पर्याप्त रूप से प्राप्त नहीं हो पाती तो व्यक्ति का कुपोषण होना आरम्भ हो जाता है। इसके अतिरिक्त शरीर में भोजन ग्रहण करने की निश्चित मात्रा होती है। यदि एक ही भोजन तत्व को अधिक या कम मात्रा में लिया जायेगा तो कुपोषण होने की सम्भावना रहती है।

५- *आर्थिक स्थिति का ठीक न होना;* आजकल के महँगाई के युग में अधिकांश जनता को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता, जिसके कारण उनके शरीर में पोषक तत्त्वों की कमी रहती है। इसके अतिरिक्त कुछ लोग अज्ञानता के कारण भोजन पर अपनी आय का उतना प्रतिशत व्यय नहीं कर पाते जितना उन्हें करना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप

उनके शरीर में पोषक तत्त्वों की कमी होती जाती है और वे इस प्रकार से कुपोषण के रोगों से पीड़ित हो जाते है।

६- *भोजन सम्बन्धित आदतें;* भोजन सदैव नियमित समय पर ही करना चाहिये। नियमित रूप से भोजन करने पर भोजन का उचित रूप से पोषण होता रहता है। असमय भोजन करने से पाचन क्रिया खराब हो जाती है जिसका परिणाम होता है- बदहजमी, अपच, पेट का दर्द इत्यादि रोग।

७- *अत्यधिक कार्य;* हर समय कार्य करने से भी व्यक्ति के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, इसलिए व्यक्ति को कार्य के साथ साथ आराम भी करना चाहिए अन्यथा वह कुपोषण का शिकार बन सकता है।

''निद्रा की कमी'' एवं ''घर की परिस्थितियाँ'' भी बालकों में कुपोषण का कारण बनती हैं।

कुपोषण से बचने के लिए बालक के भोजन में उपर्युक्त कमियों को कम करना चाहिए, ताकि बालक का उत्तम विकास हो सके।

स्वास्थ्य की अवधारणा[६]

उत्तम स्वास्थ्य अपने आप में एक लक्ष्य है जिसे प्रत्येक व्यक्ति पाने का हरसम्भव प्रयास करता है। सदैव स्वस्थ एवं निरोग रहने की प्रवृत्ति ही मनुष्य को सुखी तथा प्रभावशाली जीवन व्यतीत करने में सहायक होती है।

स्वास्थ्य की परिभाषा स्वास्थ्य का शाब्दिक अर्थ है -''शरीर एवं मस्तिष्क का ऐसी अवस्था में होना जिससे वह सभी कार्य सुचारू रूप से कर सके।''

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रदत्त परिभाषा के अनुसार, ''शरीर को मात्र रोगों से बचाकर रखना अथवा अशक्त न होना ही स्वास्थ्य नहीं है, अपितु स्वास्थ्य से अभिप्राय सम्पूर्ण भौतिक, मानसिक एवं सामाजिक अवस्था में स्वस्थ रहने से है।''

स्वास्थ्य सम्बन्धित विभिन्न परिभाषायें निम्न हैं :

१- *जे०एस० विलियम्स* के अनुसार, ''स्वास्थ्य जीवन का वह गुण है जो व्यक्ति को अधिक समय तक जीवित रहने तथा सर्वोत्तम प्रकार से सेवा के योग्य बनाता है।

२- *वेब्सटर के अनुसार,* ''स्वस्थ्य शरीर, मन या आत्मा में स्वस्थता तथा निरोगता की अवस्था है, मुख्यतः यह शारीरिक रोग अथवा दर्द का अभाव है।''

३- *फ्रैंक्लीन पी० एडम्ज के अनुसार,* ''स्वास्थ्य वह वस्तु है जिससे मनुष्य संसार के सुख भोगते हुए सदैव आनन्दित रहता है।''

अतः कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य वह दशा है जिसमें व्यक्ति मानसिक, शारीरिक तथा वातावरण सम्बन्धी प्राकृतिक नियमों के आधारपर अपना जीवन निर्वाह करता है। ये प्राकृतिक नियम स्वच्छ तथा ताजी वायु, स्वच्छ जल, सूर्य का प्रकाश, सन्तुलित भोजन, नियमित व्यायाम, शान्त एवं तनाव रहित वातावरण, नियमित सम्पूर्ण निद्रा एवं शारीरिक स्वच्छता से सम्बन्ध रखता है।

स्वास्थ्य के प्रकार[७]

स्वास्थ्य के कई प्रकार हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अनुमोदित प्रकारों में स्वास्थ्य के तीन प्रमुख प्रकार हैं - १. शारीरिक स्वास्थ्य, २. मानसिक स्वास्थ्य, ३. सामाजिक स्वास्थ्य।

१. *शारीरिक स्वास्थ्य;* शारीरिक स्वास्थ्य किसी भी समय लोगों की सामान्य शारीरिक स्थिति को संदर्भित करता है। यह शरीर का कल्याण है और इसकी इष्टतम कार्य प्रणाली है। *यह बीमारियों की अनुपस्थिति और जीव की अच्छी शारीरिक क्रियाकलाप है।* वायरल हमलों या चोटों का हमारे शारीरिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिसे अन्य कारकों द्वारा भी बदला जाता है। इसलिए यह आवश्यक है।

आराम करें और ठींक से सोयें, साथ ही साथ जब आवश्यक हो तो और आराम करें।

२. *मानसिक स्वास्थ्य;* मानसिक स्वास्थ्य जिसे अक्सर भावनात्मक स्वास्थ्य भी कहा जाता है, एक जटिल अवधारणा है। *न केवल यह दर्शाता है कि किसी व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक विकार हैं या नहीं।* यह उच्च स्तर का आत्म-सम्मान रखने, अपने बारे में अच्छा महसूस करने, जीवन से प्रेरित होने और महत्वपूर्ण लक्ष्यों के साथ विशेषता है जो आपको आशावाद और आशा के साथ जीने में मदद करता है, लचीलापन की क्षमता और समस्याओं का सामना करने के लिए और भावनात्मक संतुलन, स्वायत्तता और तनाव से मुक्त जीवन और अत्यधिक चिंता का आनन्द लेने के लिए।

३. *सामाजिक स्वास्थ्य;* मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और *हमारी अधिकांश कल्याण हमारे आस-पास की स्थितियों से निर्धारित होती है,* वह है हमारे पर्यावरण। वास्तव में, यहाँ तक कि हमारी अपनी पहचान भी दूसरों के साथ बातचीत में बनाई और विकसित की गई है।

यद्यपि, सामाजिक स्वास्थ्य केवल दोस्तों के होने का तथ्य नहीं है, बल्कि हमारे जीवन की स्थितियों के साथ करना है, जैसे स्थिर नौकरी, आर्थिक स्थिरता, स्वास्थ्य देखभाल तक पहुँच, मनोरंजक गतिविधियों तक पहुँच और अवकाश आदि।

स्वास्थ्य को बनाये रखने का महत्व[४]

अच्छा स्वास्थ्य जीवन में विभिन्न अन्य कार्यों को पूरा करने का आधार बनता है;

पारिवारिक जीवन : कोई व्यक्ति जो शारीरिक रूप से अनफिट है, वह अपने परिवार की देखभाल नहीं कर सकता है। इसी तरह, कोई व्यक्ति मानसिक तनाव का अनुभव कर रहा है, और अपनी भावनाओं को सम्भालने में असमर्थता अच्छे पारिवारिक सम्बन्धों का निर्माण और प्रचार नहीं कर सकता है।

कार्य : यह बिना कहे चला जाता है कि शारीरिक रूप से अनफिट व्यक्ति ठींक से काम नहीं कर सकता है। अच्छी तरह से काम करने के लिए अच्छा मानसिक स्वास्थ्य भी उतना ही आवश्यक है। काम पर पहचान बनाने के लिए अच्छे सामाजिक और संज्ञानात्मक स्वास्थ्य का भी आनन्द लेना चाहिए।

अध्ययन : गरीब शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अध्ययन में बाधा है। अच्छी तरह से अध्ययन करने के लिए अच्छे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के अलावा अच्छे संज्ञानात्मक स्वास्थ्य को बनाये रखना महत्वपूर्ण है।

अतः हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि अपने स्वास्थ्य का अत्यधिक ध्यान रखना आवश्यक है। यह केवल तभी सम्भव है जब बालक स्वस्थ होगा। इस आधार पर कहा जा सकता है कि बालकों के विकास पर पोषण एवं स्वास्थ्य का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

संदर्भ

[१] *शिक्षा मनोविज्ञान* -पी०डी० पाठक, अग्रवाल पब्लिकेशन्स

[२] *आहार एवं पोषण विज्ञान* -डॉ० अनीता सिंह, स्टार पब्लिकेशन्स, आगरा

[३] *www.mediaforrights.org से संग्रहीत*

[४] *वही*

[५] *शिक्षा मनोविज्ञान* -पी०डी० पाठक, अग्रवाल पब्लिकेशन्स

[६] *आहार एवं पोषण विज्ञान* -डॉ० अनीता सिंह, स्टार पब्लिकेशन्स, आगरा

[७] *www.yestherapyhelps.com से संकलित*

[८] *www.theindianwire.com से संग्रहीत*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2020) **14,16-20**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 अप्रैल 2018

भारत की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था : एक अवलोकन

डॉ0 शिखा दीक्षित*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था : एक अवलोकन* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *शिखा दीक्षित* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

प्रत्येक समाज में सदस्यों के व्यवहार हेतु कुछ नियंत्रणात्मक नियम होते हैं। आदिम और कृषक समाजों में इन नियमों की अभिव्यक्ति जनरीतियों और परम्पराओं के रूप में दिखाई देती है, जबकि आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था में नियंत्रण के इन प्रतिमानों ने कानून का रूप ले लिया है। प्रत्येक समाज में इन प्रतिबंधात्मक नियमों को लागू करने के लिए कुछ निश्चित संगठन बनाये जाते हैं। आदिम समाजों मे इन्हें जनजातीय सरदारों और सामुदायिक पंचायतों के द्वारा लागू कराया जाता था। औद्योगिक व्यवस्था में इस कार्य को आधुनिक राज्य करते हैं। आदिम समाजों में नियंत्रण की यह पद्धति अपनी अरम्भिक अवस्था थी और इसका स्वरूप अनौपचारिक होता था। अधिक जटिल समाजों में नियंत्रण की पद्धति अनौपचारिक और औपचारिक दोनों प्रकार की होती है। समाज की प्रकृति जितनी ही जटिल होती है, उसकी सामाजिक नियंत्रण की पद्धति उतनी ही औपचारिक होती है। सामाजिक नियंत्रण और इसे लागू करने वाले संगठनों की नियम-प्रणाली और कार्य-प्रणाली को राजनीतिक संस्था कहते हैं। औद्योगिक व्यवस्था में राज्य, सरकार, इसके विभिन्न अंग, शक्ति, सत्ता तथा राजनीतिक दल आदि जो सामाजिक नियंत्रण के मुख्य अभिकर्त्ता हैं, राजनीतिक संस्थाओं के अन्तर्गत आते हैं।[१]

भारत की राजनीतिक व्यवस्था[२] : भारत के राष्ट्रपति हमारे देश में राज्य के प्रमुख हैं जबकि प्रधानमंत्री सरकार के प्रमुख हैं। हमारे पास एक ऊपरी सदन है जिसे राज्य सभा के रूप में जाना जाता है और एक निचला सदन जिसे लोकसभा कहा जाता है। इन सदनों के सदस्यों को संसद सदस्य (सांसद) के रूप में जाना जाता है। इन संसदीय सदनों के बारे में संक्षिप्त जानकारी यहाँ दी गई है :

लोक सभा; लोकसभा में कुल ५४५ सदस्य हैं। ५४३ लोकसभा सदस्य देश की आम जनता द्वारा चुनाव के माध्यम से चुने जाते हैं। २ लोकसभा सदस्य देश के राष्ट्रपति द्वारा सीधे एंग्लो इण्डियन कम्युनिटी से चुने जाते हैं।

अन्य आवश्यकताओं के लिए, लोकसभा सदस्यता के लिए पात्र होने के लिए २५ वर्ष की आयु होनी चाहिए।

* एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०२०, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

राज्यसभा; राज्य सभा में कुल २४५ सदस्य होते हैं। राज्य सभा के २३३ सदस्य राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों से चुने जाते हैं। राष्ट्रपति द्वारा १२ सदस्यों को नामित किया जाता है।

राज्य सभा सदस्य बनने के लिए उम्मीदवार की आयु कम से कम ३० वर्ष होनी चाहिए।

संसद सदस्य भारतीय राजनीतिक प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है और सामूहिक रूप से कई राजनीतिक निर्णय लेने की शक्ति रखते हैं।

राजनीतिक दल और सरकार का गठन; भारत में कई राजनीतिक दल हैं जो चुनाव लड़ते हैं। जिस पार्टी को बहुमत मिलता है वह सत्ता में आ जाती है। भारत सरकार का गठन कुल ५ वर्षों के लिए किया गया है।

शक्ति एवं सत्ता[३]

शक्ति किसी व्यक्ति या समूह की वह योग्यता या क्षमता है जिसके आधार पर वह अन्यों से उनकी इच्छा के न होते हुए भी अपनी इच्छाओं का पालन करवाने में सक्षम होता है। किसी भी समाज में शक्ति के विविध रूप देखे जा सकते हैं। यह बल, प्रभुत्व या छलयोजन के रूप में, वैधानिक, परम्परागत व चमत्कारिक रूप में, औपचारिक व अनौपचारिक रूप में, वैध व अवैध रूप में अथवा संकेन्द्रित व विकेन्द्रित रूप में पायी जा सकती है।

शक्ति के दो प्रमुख लक्षण होते हैं; १- यह सम्बन्धमूलक होती है, २- यह स्थितिपरक होती है।

शक्ति में व्यक्ति की किसी अन्य को प्रभावित करने की क्षमता है, फिर भी यह सरल व्यक्तिगत लक्षण न होकर मूलरूप से सम्बन्धमूलक है। शक्ति सदैव दो अथवा दो से अधिक कर्त्ताओं के बीच क्रियाशील होती है। सामान्य अर्थ में शक्ति व्यवहार की तुलना एवं मूल्यांकन का अधार है।

शक्ति स्थितिपरक होती है, अर्थात् इसे कर्त्ता किसी विशेष स्थिति में ही प्रयुक्त कर सकता है। उदाहरण के लिए एक न्यायाधीश किसी मुकदमे में अपनी शक्ति का प्रयोग केवल न्यायालय के अन्दर सम्बन्धित पक्षों पर ही कर सकता है या लोकसभा का अध्यक्ष अपने शक्ति का प्रयोग लोकसभा में बैठे सभी सदस्यों पर कर सकता है उसके बाहर नहीं। अतः स्पष्ट है कि यद्यपि शक्ति सम्बन्धमूलक है, फिर भी इसमें स्थितियाँ भी महत्वपूर्ण होती हैं।

शक्ति के प्रयोग में एक अन्य कारक महत्वपूर्ण है जिसे हम 'आशय' कहते हैं। *दहल* ने अपनी परिभाषा में शक्ति द्वारा प्रभावित होने वाले व्यक्ति के आशय को महत्व दिया है परन्तु इस तर्क को स्वीकार करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि शक्ति द्वारा प्रभावित होने वाले व्यक्ति के आशय का पता लगाना कठिन है। केवल कुछेक व्यक्तिगत सम्पर्क की स्थितियों में ही ऐसा सम्भव हो सकता है।

यदि आशय का प्रयोग शक्ति को प्रयुक्त करने वाले व्यक्ति के संदर्भ में किया जाता है तो आशय सम्बन्धी उपर्युक्त समस्या को काफी सीमा तक कम किया जा सकता है।

इस प्रकार शक्ति के निम्न लक्षणों की चर्चा की जा सकती है; १- इसका सम्बन्ध व्यक्ति या समूह के द्वारा अन्यों से अपनी बात मनवाने की क्षमता से है। २- इसमें आशय निहित होता है। ३- यह संबंधमूलक होती है अर्थात् सापेक्षिक होती है।

स्पष्ट है कि शक्ति सामाजिक सम्बन्धों में दृष्टिगत होती है और यह कई कारकों द्वारा निर्धारित होती है। शक्ति के स्रोत कई कारकों यथा सामाजिक प्रस्थिति, प्रतिष्ठा और सम्मान, प्रसिद्धि, आर्थिक एवं भौतिक शक्ति (*मार्क्स*), ज्ञान एवं प्रतिभा (*माइकल फूको*), बाहुबल आदि से निर्धारित होते हैं।

'सत्ता' सामान्यतः शक्ति को दो भागों में बांटा जाता है- १. वैध शक्ति तथा २. अवैध शक्ति।

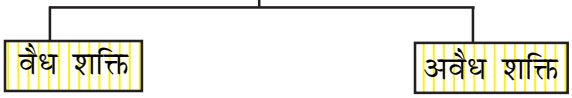

शक्ति का वैध रूप ही 'सत्ता' कहलाता है अर्थात् जब शक्ति को सामाजिक मान्यता या वैधता प्राप्त हो जाती है तो यह वैध शक्ति या शक्ति का संस्थागत रूप 'सत्ता' में परिवर्तित हो जाता है और इसे शक्ति की जगह 'सत्ता' कहा जाता है।

सत्ता के बारे में ३ बातें उल्लेखनीय है; १. इसका प्रयोग सुस्पष्ट रूप में परिभाषित संस्तरणात्मक भूमिकाओं के ताने-बाने के रूप में किया जाता है। उदाहरण के लिए, पिता-पुत्र, अध्यापक-शिष्य, मालिक-नौकर तथा शासक-शासित के सम्बन्ध स्पष्ट रूप से परिभाषित सत्ता-सम्बन्ध होते हैं। २. सत्ता सम्बन्ध संस्थागत होते हैं अर्थात् इसमें प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार एवं कर्त्तव्य स्पष्ट एवं विशिष्ट होते हैं, व्यवहार का यथोचित अनुमान लगाया जा सकता है तथा सम्बन्धों में सामान्यतः निरन्तरता पाई जाती है। ३. सत्ता, अनौपचारिक पदों को धारण करने वाले व्यक्तियों के पास उपलब्ध अनेक साधनों में से एक है। उदाहरण के लिए एक पुलिस अधिकारी की सत्ता उसके पद के कारण है तथा वह अनुपालन के लिए अपने अधिकार-क्षेत्र के अनुरूप अपनी सत्ता को एक साधन के रूप में प्रयुक्त कर सकता है।

स्पष्ट है समाज द्वारा वैधता प्राप्त शक्ति ही सत्ता है। इस वैधता के स्रोतों को आधार बनाकर 'बेबर' ने वैधता के तीन प्रकारों की चर्चा की है-

१- *तार्किक/ विधिक वैधता*- इसमें वैधता का स्रोत तार्किक आधार पर बने हुए नियम एवं कानूनों में विश्वास होता है। जैसे- जिलाधिकारी सत्ता की वैधता।

२- *परम्परागत वैधता*- इसमें वैधता के स्रोत परम्परागत रूप से चली आ रही मान्यताओं में विश्वास है। जैसे- पिता की सत्ता की वैधता।

३- *करिश्माई वैधता*- यह व्यक्ति की विलक्षण प्रतिभा एवं अद्भुत व्यक्तित्व में विश्वास पर आधारित होती है। जैसे- *गाँधी एवं लेनिन* की सत्ता की वैधता।

'सत्ता' के इन उपर्युक्त तीन स्वरूपों का वर्णन करते समय यह बात उल्लेखनीय है कि 'बेबर' सत्ता के केवल विशुद्ध प्रकारों का ही वर्णन करते हैं तथा वह इसके प्रति जागरूक थे कि आनुभविक यथार्थ में सत्ता की वैधता का केवल मिश्रण ही पाया जाता है, अर्थात् ये श्रेणियाँ केवल आदर्श प्रतिरूपी हैं। अनेक राष्ट्रों में तीनों प्रकार की सत्तायें परस्पर जुड़ी रहती हैं, यद्यपि इनमें से कोई एक ही प्रभावी हो सकती है।

..चूँकि 'बेबर' ने सत्ता का यह वर्गीकरण कर्त्ता के दृष्टिकोण से किया है अर्थात् वैधता के स्रोतों का निर्धारण अनुयायियों अथवा आज्ञापालकों द्वारा किया जाता है, इसलिए करिश्माई सत्ता को संस्थागत न मानकर वैयक्तिक माना जाता है और इसलिए इसे अवधारणात्मक स्तर पर सत्ता के अन्तर्गत शामिल नहीं किया जाता। चूँकि प्रथम दो संस्थागत एवं वैध शक्ति को परिलक्षित करते हैं, इसीलिए ये सत्ता के उदाहरण माने जाते हैं।

स्पष्ट है शक्ति एवं सत्ता की अवधारणा राजनीतिक व्यवस्था की आधारभूत इकाई है और राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार के सम्बन्धों का संगठन इसी के आधार पर सम्भव होता है।

शक्ति एवं सत्ता में अन्तर[४]

सत्ता और शक्ति दोनों समानार्थक शब्द प्रतीत होते हैं लेकिन इनमें आधारभूत अन्तर पाया जाता है सत्ता शक्ति से व्यापक अवधारणा है-

१- सत्ता स्थिति गत और वैधानिक और संस्थागत होती है यह संगठन की संरचना से जुड़ी अवधारणा है।

२- सत्ता का निवास स्थल पदों में निहित होता है इसका प्रभाव ऊपर से नीचे की दिशा में होता है।

३- सत्ता से अनिवार्यता उत्तरदायित्व का पहलू जुड़ा होता है।

४- इसके विकास का आधार संगठनात्मक संरचना होती है।

५- यह उच्चस्थ और निम्नस्थ के मध्य शक्ति के बटवारे पर आधारित होती है।

६- जब कि शक्ति 'संस्थागत के स्थान पर व्यक्तिगत आधार रखती है।
७- इसका स्वरूप ना तो वैधानिक होता है ना ही स्थिति गत।
८- इससे उत्तरदायित्व नहीं जुड़ा होता।
९- यह संगठन संरचना से जुड़ी अवधारणा नहीं है सत्ता के अस्तित्व पर ही शक्ति का दीर्घकाल तक अस्तित्व रह सकता है।
१०-इसका उद्गम व्यक्तिगत होता है और व्यक्तिगत स्थिति के कारण ही अंतर भी होता है।
११-इसका संबंध दो व्यक्तियों के मध्य क्षमता के विभाजन से है।

शक्ति और सत्ता राजनीतिक समाजशास्त्र की केन्द्रीय अवधारणा है जिनके अनुसार समाज में किसी व्यक्ति या समूह द्वारा अन्यों से उनकी इच्छा के विपरीत अपनी बात मनवाने की क्षमता या ताकत शक्ति है, और जब इस शक्ति को समाज द्वारा संस्थागत रूप से वैधता दे दी जाती है तब यह सत्ता में परिवर्तित हो जाती है।

स्पष्ट है कि सत्ता शक्ति का वैध रूप है; जैसे- पिता द्वारा बच्चों को डांटने की शक्ति को समाज द्वारा संस्थागत रूप से वैधता प्रदान की गयी है जबकि डाकू द्वारा चाकू दिखाकर किसी की जेब से पैसा निकलवाना समाज द्वारा वैध नहीं है। इन दोनों ही संदर्भों में शक्ति निहित है परन्तु अवधारणात्मक स्तर पर पिता की शक्ति 'सत्ता' कहलायेगी और अपराधी की शक्ति 'शक्ति' कहलायेगी।[५]

राजनीति का समाज पर प्रभाव[६]

राजनीति कब एक सफल व्यवसाय के रूप में परिवर्तित हो गई। यह बात न हम जानते हैं न आप, क्योंकि भारत की अधिकांश जनसंख्या या तो किसान है या मजदूर, मजदूर के शरीर में मिल-मालिक इतना खून ही नहीं छोड़ते कि वे देश-दुनिया के बारे में सोचे। वो तो ब-मुश्किल अपने परिवार के बारे में ही सोच ले तो बड़ी गनीमत है। अब रहा किसान, तो किसान क्या कर रहा है जी, वो आत्महत्या कर रहा है, क्योंकि किसान के लिए सरकार के पास केवल वादे हैं और केवल वादों से न धान, न गेहूँ और न गन्ना कोई भी फसल तैयार नहीं होती है।

राजनीति में जातिवाद और साम्प्रदायिकता अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही रही है चूँकि यह दोनों ही तत्व राजनीतिक दलों के लिए प्रोटीन का काम करते हैं। इस प्रकार की राजनीति घोर नकरात्मकता ही सिद्ध करती है। जिसका मूल उद्देश्य ही देश की अखण्डता एवं एकता को तोड़ना है। ज्वलंत मुद्दों को वोट बैंक में बदलना एक परिपाटी बन चुका है जिसमें कोई भी पार्टी पीछे नहीं रहना चाहती।

भड़काऊ भाषण अपनी चरम सीमा पर है। संवैधानिक पद पर बैठे, इन जिम्मेदार लोगों द्वारा यह गैर-जिम्मेदाराना बयानबाजी का परिणाम यह होता है कि भोली -भाली जनता अपने विवेक का इस्तेमाल किए बिना ही आक्रोशित हो जाती है। यह आक्रोश जब बाहर निकलता है तब दंगो का रूप इख़्तियार कर लेता है। राजनीति का स्तर इतना नीचे आ चुका है, जहाँ भगवान को भी घसीटा गया। आजकल देश भर में इस बात की चर्चा हो रही है कि हनुमान जी दलित हैं या नहीं। कभी तो भगवान के नाम पर तो कभी अम्बेडकर के नाम पर समाज को खण्डित करते रहे हैं।

देश की राजनीति इस समय सिर्फ गाय और मुसलमानों पर टिकी है। किसी को लगता है कि गाय संकट में है तो किसी को लगता है मुसलमान खतरे में हैं। असल समस्या क्या है? उस पर किसी का ध्यान नहीं है। सिनेमा के बाद यदि कुछ है तो वो राजनीति है जिसका समाज पर इतना गहरा प्रभाव पड़ता है।

पिछले दिनों सोशल मीडिया पर एक व्यंग्य चल रहा था कि 'देश का युवा अभी सो रहा है सुबह उठेगा और १जीबी डाटा खत्म करेगा।' यह ऊपरी तौर पर तो व्यंग्य है लेकिन इसमें छिपी गम्भीरता को हम नजरअंदाज कर देते हैं। सवाल यह है कि पढ़े लिखे युवक करें तो क्या करें? वे तो बेरोजगारी की चक्की मे पिस रहे हैं। सत्ता में आने

पर पहले सभी पर्टियों के घोषणा-पत्र में युवाओं के लिए रोजगार का सुनहरा अवसर का द्वार दिखाया जाता है लेकिन ऐसा नहीं होता है, इसी वजह से युवाओं में राजनीतिक पार्टियों के प्रति खासा असंतोष देखने को मिल रहा है।

इसी तरह वे अनेक योजनायें चलाते हैं, लेकिन उन योजनाओं का लाभ जनता तक कितना पहुँचता है यह आप और हम सभी जानते हैं (यदि कुछ अपवाद छोड़ दें तो)।

एक आम इन्सान दो वक्त की रोटी जुटाने की जुस्त करे या वो महीनों दफ्तर के चक्कर काटे इसलिए सरकारी योजनाओं के लाभ सिर्फ कागजों में ही दफन हो जाते हैं।

अन्ततः सवाल वही आन खड़ा होता है कि राजनीति में बुरे और बहुत बुरे में से किसे चुना जाए? फिर भी चुनना तो पड़ेगा और बाद में पता चलता है कि एक बार फिर से ठगा गया है। इसलिए धूमिल ने बहुत पहले ही लिख दिया था- ''एक आदमी रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है/ जो न रोटी बेलता है/ न रोटी खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है/ मैं पूछता हूँ/ यह तीसरा आदमी कौन है?/ तो मेरे देश की संसद मौन है। -रिजवान अली।

संदर्भ ग्रंथ

[1]समाजशास्त्र -एस०एस० पाण्डेय, टाटा मैग्ग्रॉ हिल एजुकेशन प्रा०लि०, न्यू देलही
[2]*www.hindi.theindianwire.com,* से संग्रहित
[3]समाजशास्त्र -एस०एस० पाण्डेय, टाटा मैग्ग्रॉ हिल एजुकेशन प्रा०लि०, न्यू देलही
[4]*www.govtexamsuccess.com,* से संकलित
[5]समाजशास्त्र -एस०एस० पाण्डेय, टाटा मैग्ग्रॉ हिल एजुकेशन प्रा०लि०, न्यू देलहा
[6]*www.newson10.com,* से संकलित

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2020) **14,27-32**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 अप्रैल 2018

भारतीय लोकतंत्र

डॉ0 राजेश सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय लोकतंत्र* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *राजेश सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

उदारवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था आधुनिक समाज में राजनीतिक व्यवस्था का सर्वाधिक प्रचलित स्वरूप है जिसे दुनियाँ के अधिकांश देशों द्वारा अपनाया गया है। *अब्राहम लिंकन* ने इस लोकतांत्रिक व्यवस्था की परिभाषा देते हुए कहा है कि, ''लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन है।'' इस तरह लोकतंत्र एक ऐसी शासन व्यवस्था है जिसमें जनता का शासन होता है अर्थात् सरकारी तंत्र का संचालन जनता के चुना हुए प्रतिनिधि करते हैं और जो अपनी नीतियों एवं कार्यों हेतु जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।[१]

भारत दुनियाँ का सबसे बड़ा लोक तंत्रात्मक राष्ट्र है। अभी तक लोकतंत्र भारत में सफलतापूर्वक चल भी रहा है, लेकिन भारत में लोकतंत्र सफल हुआ है या नहीं इस विषय में विवाद है।[२] 'लोकतंत्र' की व्याख्या/ परिभाषा के माध्यम से समझा जा सकता है। विभिन्न विद्वानों ने अपने अनुसार लोकतंत्र की व्याख्या की है -

[३]बाबा साहेब अम्बेडकर ने लोकतंत्र के बारे में लिखा है, ''लोकतंत्र का अर्थ है, एक ऐसी जीवन पद्धति जिसमें स्वतंत्रता, समता और बन्धुता समाज-जीवन के मूल सिद्धान्त होते हैं।''

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने लिखा है, ''लोकतंत्र अपनी महंगी और समय बर्बाद करने वाली खूबियों के साथ सिर्फ भ्रमित करने का एक तरीका भर है जिससे जनता को विश्वास दिलाया जाता है कि वह ही शासक है जबकि वास्तविक सत्ता कुछ गिने-चुने लोगों के हाथ में ही होती ।''

उपरोक्त दोनों कथन एक-दूसरे के विरूद्ध होने के बाद भी लोकतंत्र की व्यापकता को इंगित करने के लिए पर्याप्त हैं। लोकतंत्र शब्द राजनीतिक शब्दावली के सर्वाधिक इस्तेमाल किये जाने वाले शब्दों में से एक है। यह महत्वपूर्ण अवधारणा है, जो अपनी बहु-आयामी अर्थों के कारण समाज और मनुष्य के जीवन के बहुत से सिद्धान्तों को प्रभावित करता है।

* प्रधानाचार्य, एस0बी0 इण्टर कॉलेज (लहुआँकला) आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०२०, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

'लोकतंत्र' शब्द अंग्रेजी पर्याय *डेमोक्रेसी* (Democracy) है जिसकी उत्पत्ति ग्रीक मूल शब्द 'डेमोस' से हुई हैं डेमोस का अर्थ होता है -'जन साधारण' और इस शब्द में 'क्रेसी' शब्द जोड़ा गया है जिसका अर्थ 'शासन' होता है।

सरटोरी ने अपनी पुस्तक *डेमोक्रेटिक क्योरी* में लिखा है कि राजनीतिक लोकतंत्र एक तरीका या प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रतियोगी संघर्ष से सत्ता प्राप्ति की जाती है और कुछ लोग इस सत्ता को नेतृत्व प्रदान करते हैं। सरटोरी के अनुसार लोकतंत्र काफी कठिन शासन है, इतना कठिन कि केवल विशेषज्ञ लोग ही इसे भीड़तंत्र से बचा सकते हैं अतः इसकी प्रक्रिया को मजबूत बनाना आवश्यक है। (सरटोरी : १९८५; ३-१०)

हटिंगटन के अनुसार लोकतंत्र को तीन आधारों पर समझा जा सकता है -१. शासकीय सत्ता का एक साधन, २. सरकार के उद्देश्य, ३. सरकार को चुनने की प्रक्रिया के रूप में। हंटिगटन के अनुसार, लोकतंत्र की इस प्रक्रिया के अन्तर्गत स्वतंत्र, निष्पक्ष और आवधिक चुनाव के द्वारा 'सबसे शक्तिशाली सामूहिक निर्णय-निर्माता' चुने जाते हैं और सभी वयस्क लोगों को सह-भागिता प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया को पूरा करने के लिए नागरिकों को स्वतंत्रतायें तथा कुछ अधिकार भी प्रदान किये जाते हैं।

भारतीय लोकतंत्र के लक्षण[४]

लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के निम्नांकित लक्षणों की हम चर्चा कर सकते हैं;

१- इस व्यवस्था में सरकार का निर्माण जनता द्वारा जन-प्रतिनिधियों द्वारा होता है जो जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

२- इसमें एक से अधिक राजनीतिक दलों के बीच खुली प्रतिस्पर्धा होती है अर्थात् यह खुले चुनाव द्वारा सम्पन्न होता है।

३- इसमें चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर समय-समय पर सम्पन्न होते हैं।

४- इसमें नागरिक स्वतंत्रता के रूप में अभिव्यक्ति, धर्म-पालन, संघ निर्माण आदि की स्वतंत्रता की गारण्टी होती है।

५- इस व्यवस्था में स्वाधीन न्यायपालिका होती है।

६- इसमें जनसम्पर्क के माध्यमों पर सरकार का एकाधिकार नहीं होता है।

७- इसमें शक्तियों के पृथक्करण की व्यवस्था होती है; अर्थात् सरकार के ३ स्तम्भ के रूप में विधायिका, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

भारत में कार्यपालिका को विधायिका के नियंत्रण में रखा गया है, अतः यहाँ पृथक्करण का सिद्धान्त कठोर रूप में लागू नहीं होता है।

८- इसमें सरकारी निर्णयों को प्रभावित करने हेतु दबाव समूह को कार्य करने का पूरा अवसर प्राप्त होता है।

ऊपर्युक्त लक्षण मुख्यतया राजनीतिक व्यवस्था के लोकतांत्रिक स्वरूप को दर्शाते हैं परन्तु आधुनिक युग में लोकतंत्र सरकार या राजनीतिक व्यवस्था का केवल रूप मात्र नहीं है बल्कि व्यापक और नैतिक तौर पर यह एक जीवन पद्धति है, समाज की एक व्यवस्था है, सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों का एक तरीका है आदि। ऐसी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था नागरिकों की गरिमा, समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व और सामाजिक न्याय जैसे मूल्यों पर आधारित होती है।

भारतीय लोकतंत्र के सिद्धान्त[५]

इस समय भारत में सात राष्ट्रीय पार्टियाँ हैं जो इस प्रकार हैं; १. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (एनसीपी), २. राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (एनसीपी), ३. भारतीय जनता पार्टी (भाजपा), ४. भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी (सीपीआई), ५. कम्युनिस्ट

पार्टी ऑफ इण्डिया मार्क्सिस्ट (सीपीआई-एम), ६. अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस (टीएमसी), ७. बहुजन समाज पार्टी (बसपा)। इनके अतिरिक्त कई क्षेत्रीय पार्टियाँ राज्य विधानसभा चुनावों के लिए लड़ती हैं। भारत में संसद और राज्य विधानसभाओं का चुनाव हर ५ सालों में होता है।

भारत के लोकतांत्रिक सिद्धान्त इस प्रकार है :

१. *सम्प्रभु;* इसका मतलब होता है स्वतंत्र -किसी भी विदेशी शक्ति के हस्तक्षेप या नियंत्रण से मुक्त। देश को चलाने वाली सरकार नागरिकों द्वारा एक निर्वाचित सरकार है। भारतीय नागरिकों की संसद, स्थानीय निकायों और राज्य विधानमण्डल के लिए किये गये चुनावों द्वारा अपने नेताओं का चुनाव करने की शक्ति है।

२. *समाजवादी;* इसका अर्थ है देश के सभी नागरिकों के लिए सामाजिक और आर्थिक समानता। लोकतांत्रिक समाजवाद का अर्थ है -विकासवादी, लोकतांत्रिक और अहिंसक साधनों के माध्यम से समाजवादी लक्ष्यों को प्राप्त करना। धन की एकाग्रता कम करने तथा आर्थिक असमानता को कम करने के लिए सरकार लगातार प्रयास कर रही है।

३. *धर्म निरपेक्षता;* धर्म निरपेक्षता का तात्पर्य धर्म का चयन करने का अधिकार और स्वतंत्रता। भारत में किसी को भी किसी भी धर्म का अभ्यास करने या उन सभी को अस्वीकार करने का अधिकार है। भारत सरकार सभी धर्मों का सम्मान करती है और उनके पास कोई आधिकारिक राज्य धर्म नहीं है। भारत का लोकतंत्र किसी भी धर्म को अपमान या बढ़ावा नहीं देता है।

४. *लोकतांत्रिक;* इसका मतलब है कि देश की सरकार अपने नागरिकों द्वारा लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित हुई है। देश के लोगों को सभी स्तरों (संघ, राज्य और स्थानीय) पर अपनी सरकार का चुनाव करने का अधिकार है। लोगों के वयस्क मताधिकार को 'एक आदमी एक वोट' के रूप में जाना जाता है। मतदान का अधिकार किसी भी भेदभाव के बिना रंग, जाति, पंथ, धर्म, लिंग या शिक्षा के आधार पर दिया जाता है। न सिर्फ राजनीतिक बल्कि भारत के लोग सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र का भी आनन्द लेते हैं।

५. *गणतंत्र;* राज्य का मुखिया आनुवंशिकता राजा या रानी नहीं बल्कि एक निर्वाचित व्यक्ति हैं राज्य के औपचारिक प्रमुख अर्थात् भारत के राष्ट्रपति, पाँच साल की अवधि के लिए चुनावी प्रक्रिया द्वारा (लोकसभा तथा राज्यसभा) द्वारा चुने जाते हैं जबकि कार्यकारी शक्तियाँ प्रधानमंत्री में निहित होती है।

भारतीय लोकतंत्र के प्रकार[६]

लोकतंत्र (अब्राहम लिंकन) की परिभाषा के अनुसार, 'यह जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन है;' लेकिन अगल-अगल देशकाल और परिस्थितियों में अलग-अलग धारणाओं के प्रयोग से इसकी अवधारणा कुछ जटिल हो गयी है। प्राचीनकाल से ही लोकतंत्र के संदर्भ में कई प्रस्ताव रखे गये हैं, पर इनमें से कई कभी क्रियान्वित नहीं हुए।

प्रतिनिधि लोकतंत्र; प्रतिनिधि लोकतंत्र में जनता अधिकारियों को सीधे चुनती है। प्रतिनिधि किसी जिले या संसदीय क्षेत्र से चुने जाते हैं या कई समानुपातिक व्यवस्थाओं में सभी मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ देशों में मिश्रित व्यवस्था प्रयुक्त होती है। यद्यपि इस तरह के लोकतंत्र में प्रतिनिधि जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं, लेकिन जनता के हित में कार्य करने की नीतियाँ प्रतिनिधि स्वयं तय करते हैं।

इस प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जनादेश का दबाव नीतिगत विचलनों पर रोक का काम करता है क्योंकि नियमित अन्तरालों पर सत्ता का वैधता हेतु चुनाव अनिवार्य है।

उदार लोकतंत्र; एक तरह का प्रतिनिधि लोकतंत्र है जिसमें स्वच्छ और निष्पक्ष चुनाव होते हैं। उदार लोकतंत्र के चरित्रगत लक्षणों में, अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, कानून व्यवस्था, शक्तियों के वितरण आदि के अलावा अभिव्यक्ति, भाषा, सभा, धर्म और सम्पत्ति की स्वतंत्रता प्रमुख है।

प्रत्यक्ष लोकतंत्र; प्रत्यक्ष लोकतंत्र में सभी नागरिक सारे महत्वपूर्ण नीतिगत फैसलों पर मतदान करते हैं। इसे प्रत्यक्ष कहा जाता है क्योंकि सैद्धान्तिक रूप से इसमें कोई प्रतिनिधि या मध्यस्थ नहीं होता। सभी प्रत्यक्ष लोकतंत्र छोटे समुदाय या नगर-राष्ट्रों में है। उदाहरण के लिए स्विट्जरलैण्ड।

भारतीय लोकतंत्र को प्रभावित करने वाले पारम्परिक व्यवस्था के तत्व[७]

लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में लोकतंत्रीकरण पर बल देती है और इसके लक्ष्य (जैसे- सामाजिक-आर्थिक समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, शक्ति और सत्ता का विकेन्द्रीकरण आदि) सामान्यतः परम्परागत समाज के तत्वों के विपरीत होते हैं और एक प्रक्रिया के रूप में यह व्यवस्था परम्परागत समाज को आधुनिकता की ओर अग्रसारित करती है, इसलिए परम्परागत समाज के तत्व इसके मार्ग में अक्सर रूकावटें पैदा करते हैं। इन परम्परागत तत्त्वों को हम निम्नांकित बिंदुओं के अन्तर्गत देख सकते हैं :

- *सामाजिक असमानता और भेदभाव;* सामाजिक असमानता और भेदभाव दुनिया के कमोबंश सभी परम्परागत समाजों की विशेषता रही है जिसने निरन्तर अधिकारविहीन लोगों के हाथों में सत्ता के विकेन्द्रीकरण को रोका है और अपने परम्परागत विशेषाधिकारों के बल पर कुछ समूहों के द्वारा लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत सत्ता को स्वयं के पास केन्द्रित करने का प्रयास किया हैं
- *आर्थिक असमानता;* परम्परागत समाज में ज्ञात आर्थिक असमानता में आर्थिक प्रलोभनों के द्वारा वंचित तबके के मतों को अपने पक्ष में करके लोकतंत्र को कमजोर किया है।
- *अशिक्षा एवं राजनीतिक जागरूकता का अभाव;* लगभग दुनियाँ के सभी समाजों में परम्परागत समाज की इस विशेषता ने राजनीतिक सह-भागिता को अवरोधित करके लोकतंत्र को बाधित किया है।
- *धार्मिक रूढ़िवाद; धर्म* प्रधान परम्परागत समाज में धार्मिक रूढ़िवाद लोकतांत्रिक समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति को बाधित करता रहा है और धर्मनिरपेक्ष समाज के निर्माण के लक्ष्य को दूर किया है।
- *सामन्ती मनोवृत्ति;* परम्परागत समाज के इस लक्षण ने भी लोगों की राजनीतिक सह-भागिता को जोर-जबरदस्ती द्वारा रोकने और सत्ता के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को अवरोधित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।
- *परिवारवाद;* परिवारवाद पारम्परिक समाज का एक प्रमुख लक्षण रहा है जो आज भी दुनियाँ के लोकतांत्रिक देशों में सत्ता को अपने परिवारों तक सीमित करने का प्रयास कर लोकतंत्र को कमजोर कर रहा है।

स्पष्टतः है कि परम्परागत समाज में उपर्युक्त तत्वों की विद्यमानता लोकतांत्रिक प्रक्रिया के निर्बाध संचालन के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती रही है बावजूद इसके लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था ने इन तत्वों में बदलाव लाकर लोक-तांत्रिक समाज की स्थापना को सम्भव बनाया है। दुनियाँ के अधिकांश देशों में जब यह प्रणाली लागू की गई तो उस समय इन तत्वों का बोलबाला था, किन्तु इस प्रणाली के लागू होने के बाद इन सब तत्वों का उन्मूलन कर दिया गया, और इस प्रणाली (लोकतंत्र) अपने सफलता के प्रतिमानों को स्थापित किया है।

फिर भी विचारणीय है कि परम्परागत तत्त्वों में से कुछेक तत्व हैं जो लोकतंत्र को सफल बनाने में अवरोधक का काम कर रहे हैं, इनमें 'जातिवाद' है जो जाति के आधार पर लोकतांत्रिक मूल्यों को असमानता एवं भेदभाव को प्रकट करता है। जातिवाद के रूप में जहाँ लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बाधक रही है वहीं इसके जातीय आधार पर लोगों में जागरूकता लाकर, जातीय हितों का संवर्धन करके, मंत्रीमण्डल में जातीय आधार पर सभी जातियों में प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करके लोकतंत्र को संपोषित एवं संवर्धित करने का कार्य भी किया गया है।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि परम्परागत तत्व लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में बाधक तत्व हैं, इनके साथ साथ एक समायोजन प्रक्रिया भी क्रियाशील रही है और दुनियाँ के लगभग सभी देशों में लोकतंत्र का इन परम्परागत तत्वों के साथ सफल अन्तःक्रिया और समायोजन के द्वारा ही लोकतांत्रिक समाज का निर्माण सम्भव हो सका है।

भारतीय लोकतंत्र के दोष/ कमियाँ

भारतीय लोकतंत्र में निम्नलिखित दोष/ कमियाँ हैं :

१- सशक्त विपक्ष का अभाव।
२- उत्तरदायी विपक्ष का अभाव।
३- भ्रष्टाचार।
४- नौकरशाह का प्रभुत्व।
५- हिंसा तथा नकारात्मक आन्दोलन की राजनीति।
६- राजनीतिक अस्थिरता।
७- संसद के उच्च स्तर का अभाव।
८- बहु-दलीय प्रणाली।
९- नैतिक मूल्यों में कमी।
१०- स्वस्थ परम्पराओं का अभाव।
११- चुनावों की निष्पक्षता पर संदेह।
१२- केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति से केन्द्र राज्य सम्बन्धों में तनाव।
१३- अनुशासनहीनता।
१४- एक विशिष्ट राजनीति अभिजन वर्ग का विकास।
१५- आर्थिक असमानता में बढ़ोत्तरी।

ऊपर्युक्त दोषों के कारण भारत में संसदीय लोकतंत्र के स्थान पर अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को स्थापित करने के लिए मांग उठाई जाती रही है, लेकिन अधिकांश विद्वान भारत में संसदीय लोकतंत्र को ही उचित मानते हैं। व्यवस्था चाहे संसदात्मक हो या अध्यक्षात्मक इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने संविधान सभा में कहा था कि, ''संविधान में कुछ प्रावधान हों या न हों, देश का कल्याण इस पर निर्भर करेगा कि उसका शासन कैसा है और शासन निर्भर करेगा शासकों पर। कहा जाता है कि किसी देश को वैसी ही सरकार मिलती है जिसका वह अधिकारी है। जिन लोगों को चुना गया है, यदि वे योग्य, ईमानदार तथा चरित्र और निष्ठा वाले व्यक्ति हुए, तो वे त्रुटिपूर्ण संविधान को भी सर्वोत्तम बना देंगे।''

भारत में लोकतंत्र सफल है, लेकिन वर्तमान संकुचित प्रवृत्तियाँ इसे 'भीड़तंत्र' में परिणत करने को कटिबद्ध प्रतीत होती है। समय रहते इसका उपचार करना आवश्यक है, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जन-मानस की स्वस्थ, मानसिकता को बनाना तथा उसे बनाये रखना। राजनीतिक नेतृत्व जन-मानस की मानसिकता को प्रदूषित करते रहते हैं, जिससे लोकतंत्र को खतरा पैदा होता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि -भारत वर्ष के लोकतंत्र प्रणाली की प्रशंसा विश्व के तमाम देशों में की जाती है। भारत वर्ष के निवासी को वोट डालने का अधिकार है, उनके जाति, रंग, पंथ, धर्म, लिंग या शिक्षा के आधार पर किसी भी प्रकार के भेद-भाव के बिना। देश के विशाल सांस्कृति, धार्मिक और भाषाई विविधता लोकतंत्र के लिए एक बड़ी चुनौती है। इसके साथ ही आज के समय में लोगों के बीच का यह मतभेद एक गम्भीर चिंता का कारण बन गया है। भारत वर्ष में लोकतंत्र के सुचारू कार्य को सुनिश्चित करने के लिए हमें इन विभाजनकारी प्रवृत्तियों को रोकने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ

[१] *समाजशास्त्र* -एस०एस० पाण्डेय, टाटा मैक्ग्रॉ हिल एजुकेशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ६.२७
[२] प्रतियोगिता दर्पण, अतिरिक्तांक-२००५, पृष्ठ संख्या १५८
[३] *www.hindi.webdunia.com,* से लिया गया
[४] *समाजशास्त्र* -एस०एस० पाण्डेय, पृष्ठ संख्या ६.२७
[५] *www.hindikiduniya.com,* से गृहीत
[६] *www.hi.wikipedia.org,* से संकलित
[७] *समाजशास्त्र* -एस०एस० पाण्डेय, टाटा मैक्ग्रॉ हिल एजुकेशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ६.२९
[८] प्रतियोगिता दर्पण, अतिरिक्तांक-२००५, पृष्ठ संख्या १५८
[९] *www.hindikiduniya.com,* से गृहीत

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2020) **14,37-41**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 अप्रैल 2018

भारतीय ज्ञान परम्परा में आयुर्वेद : अर्बुद के विशेष संदर्भ में

डॉ० मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय ज्ञान परम्परा में आयुर्वेद : अर्बुद के विशेष संदर्भ में* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतीय ज्ञान परंपरा सदियों से मौलिक साक्ष्यों एवं निराकरण को प्रस्तुत करती आ रही है, किंतु इसके अंदर भरे हुए ज्ञानकोष काफी हद तक अनछुये हैं। पुस्तकालयों में पांडुलिपियों का समृद्ध सागर है किंतु उनमें से कई पांडुलिपि या आज भी अनछुई हैं इन्हें कोई पढ़ने के लिए लेता ही नहीं इसके पीछे कारण है उनमें से कई पांडुलिपियों की भाषा का ज्ञान ना होना। भारत में विविधता है और हर राज्य की भाषा भी अलग और पूर्व के विद्वानों द्वारा लिखी तमाम हस्तलिखित कृतियाँ आज मात्र दर्शनीय वस्तु का रूप लेकर रह गई है। इसके पीछे कारण है लोगों का इंटरनेट के माध्यम से तत्काल चीजों को ज्ञात कर लेने की आतुरता। ...अथवा प्रकाशन संस्थानों से प्राप्त पुस्तकों का अनुवाद पढ़कर जिज्ञासा पूरी कर लेने की अधिकता।

जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है मैंने आयुर्वेद में 'अर्बुद' के अध्ययन की जिज्ञासा व्यक्त की है और ऐसे शीर्षक का चुनाव किया है इसके पीछे कारण है तेजी से फैलता 'कैंसर का रोग' जिसकी उपचार प्रणाली श्रम अर्थ और समय साध्य है किंतु जीवन रक्षा की अपेक्षा और गुणवत्ता बहुत ही कम है। वर्तमान समय में आधुनिक चिकित्सा में जिस प्रणाली का उपयोग कर शरीर को स्वस्थ करने का प्रयास किया जा रहा है वह कहीं न कहीं निराशाजनक और भयावह है। ऐसा नहीं है कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति से कैंसर का उपचार और सफलता पूर्वक जीवन रक्षा का उदाहरण नहीं है किंतु प्रतिशत बहुत ही कम है।

मेरा विश्वास है भारतीय ज्ञान परंपरा में वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं महाकाव्यों समेत आयुर्वेद में नि:संदेह है इसके निदान एवं पहचान के संतोषजनक सूत्र मिल सकेंगे। उन औषधियों की पहचान हो सकेगी जो वर्तमान समय में आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था के दौर में पीछे छूट गयी हैं।

'अर्बुद' शब्द की व्याख्या[१] एवं इसके विभिन्न नामों को समझने के लिए वाचस्पत्यम् एवं अमरकोष की सहायता से उन तमाम ग्रंथों तक पहुँची जिन परिणामों ने मुझे चौंका दिया। आज भारत के विभिन्न शिक्षण संस्थानों में कहने को तो आयुर्वेद के माध्यम से 'अर्बुद' का उपचार किया जा रहा है किंतु अर्बुद के पहचान एवं निदान के पक्ष को अनदेखा कर दिया गया है

* प्रधान सम्पादिका, आन्वीक्षिकी शोध समग्र पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०२०, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इसके पीछे बड़ा कारण है कि चिकित्सकों के पास संस्कृत के मूल लोगों को अनुवाद करने की क्षमता एवं जिज्ञासा का अभाव है। खुले तौर पर चिकित्सक अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से ही आयुर्वेद की पुस्तकों को पढ़ एवं समझ रहे हैं और भारतीय ज्ञान परम्परा पर आधारित मूल ग्रंथों में उनकी रूचि नहीं है और न ही समय। आयुर्वेद की पुस्तकों को और समझ रहे हैं और भारतीय ज्ञान पर आधारित मूल ग्रंथों में रुचि नहीं है और ना ही समय है।

'अर्बुद' को कई नामों से जाना एवं समझा जा सकता है; और इसके निदान की औषधियों की वास्तविक पहचान कर उन्हें भारत के कोने–कोने से ढूँढ कर उपचार में इस्तेमाल कर सकारात्मक परिणाम पाया जा सकता है। अर्बुद के तमाम संदर्भों को इकट्ठा कर उसे एक बहुमूल्य एवं उपयोगी संदर्भ पुस्तक का रूप दिया जा सकता है।

'अर्बुद' पर अध्ययन के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा ही उत्तम मार्ग हैं। जहाँ स्कंद पुराण/ खंड–७ (प्रभास खंड में पूरा का पूरा अर्बुद खंड ही है।) रामायण (किष्किंधा कांड सर्ग –३८ में अर्बुद शब्द की अद्‌भुत व्याख्या है। वृहद्‌संहिता/ अध्याय –३२ में भी अर्बुद का उल्लेख आया है। ऋग्वेद ऋषि सूची में तो 'अर्बुद' नामक ऋषि ही हैं। यद्यपि इसका 'कैंसर' नामक रोग से कोई लेना देना नहीं है किंतु अध्ययन की गहरायी में जाकर ऐसे तमाम उदाहरण मिलेंगे जो सीधे कहीं न कहीं पर 'अर्बुद (Cancer)' रोग से जुड़े होंगे।

ऋग्वेद भाष्य भूमिका में वेदोत्पत्ति की चर्चा करते हुए 'अर्बुद' को संख्या के प्रतीक के तौर पर लिया गया है। काशिका द्वितीय अध्याय के चतुर्थ पाद में भी 'अर्बुद' का उल्लेख आया है। अष्टाध्यायी गणपाठ में भी अर्बुद की चर्चा है। अष्टांगहृदयम्/ निदानस्थानम् यह आयुर्वेद का बहुत ही उपयोगी ग्रंथ है जहाँ अर्बुद का वर्णन आया है।[२] अष्टांगहृदयम् का उत्तर स्थान भी अर्बुद के अध्ययन के लिए उपयोगी है। श्री वेंकटाचलमहात्म्य में भी अर्बुद का वर्णन आया है जहाँ इसका उल्लेख संख्यात्मक अपरिमितता के लिए द्रष्टव्य है। वाचस्पत्यम् के अरण्यजीव में अर्बुद का विस्तार से उल्लेख है।

गंडार्बुद; अर्बुद का एक प्रकार है जिसके बारे में अष्टांगहृदयम् में इस प्रकार लिखा गया है – 'व्यड्‌गाग्नि–साद–संमोह मांसं गण्डार्बुद–ग्रन्थि–गण्डोरूदर–वृद्धि–ता:।

कण्ठादिष्व् अधि–मांसं च तद्–वन् मेदस् तथा श्रमम्।१०।। अष्टांगहृदयम् अध्याय–११।

कृच्छार्बुद; यह भी अर्बुद का एक प्रकार है –

मूत्र–कृच्छ्रार्बुद–ग्रन्थि–शुक्राघाताढ्य–मारुते।

स्वेदं यथा–यथं कुर्यात् तद्–औषध–विभागत:।।२७।। अष्टांगहृदयम्।। अध्याय १७।

अर्थात् मूत्रकृच्छअर्बुद (पुरूष जननांग में कैंसर) में जब पेशाब में कठिनाई हो, मूत्रमार्ग में ग्रंथि हो जाय, शुक्राणुओं का कम या अधिक होना हो जाय, गर्मी या सर्दी का आभास हो, चिपचिपा पसीना आये या पसीना कम या अधिक हो तब औषधि आवश्यकता के अनुरूप घटा या बढ़ा देनी चाहिए।

भगन्दरार्बुद; यह भी अर्बुद का एक प्रकार है –

भगन्दरार्बुद–ग्रन्थि–दुष्ट–नाडी–व्रणादिषु।

न तूभयो ऽपि योक्तव्य: पित्ते रक्ते चले ऽ–बले।।४।। अष्टांगहृदयम्।। अध्याय ३०।

'अर्बुद' के अन्य संदर्भ

१. स्कन्दपुराण/ खण्ड –७ (प्रभासखण्ड:)/ अर्बुदखण्डम्/ अध्याय –०३; वयस्य विनयान्वित।। एतत्कार्यमहं मन्ये सांप्रतं द्विजसंभवम्।। ७.३.३.२०।। अर्बुद* उवाच।। अहं तत्रागमिष्यामि स्नेहात्ते पर्वतात्मज।। तत्रैव च वसिस्याम्

रामायणम्/ किष्किन्धाकाण्ड/ सर्ग –३८; च प्लवंगमा:। अयुतै: च आवृता वीरा शंकुभि: च परंतप।।–३८–३०।। अर्बुदै: अर्बुद शतै: मध्यै: च अन्तै: च वानरा:। समुद्रा: च परार्धा: च हरयो हरि यूथपा:।।–३८–३१।।

बृहत्संहिता/अध्याय –३२; अतिसारगलग्रहवदनरोगकृच्छर्दिकोपाय।। ३२.१८।।

काशियुगन्धरपौरवकिरातकीराभिसारहलमद्रा:। अर्बुद'सुराष्ट्र (क्.सुवास्तु) मालवपीडाकरं इष्टवृष्टिकरम्।। ३२.१९। –ऋग्वेद: ऋषिसूची

वैतहव्य: १०.९१, अर्चनाना आत्रेय: ५.६३, ५.६४, ८.४२, अर्चन् हैरण्यस्तूप: १०.१४९, अर्बुद काद्रवेय: ४०.९४, अवत्सार: काश्यप: ५.४४, ९.५३–६०, अवस्युरात्रेय: ५.३१,५

काशिकावृत्ति:/ द्वितीयोध्याय: ; कल्क, नाट, मस्तक, वलय, कुसुम, तृण, पङ्क, कुण्डल, किरीट, अर्बुद, अंकुश, तिमिर, आश्रम, भूषण, इल्वस, मुकुल, वसन्त, तडाग

काशिका/ द्वितीयोऽध्याय:/ चतुर्थ: पाद: ; वज्र, कर्पट, शिखर, कल्क, नाट, मस्तक, वलय, कुसुम, तृण, पङ्क, कुण्डल, किरीट, अर्बुद, अंकुश, तिमिर, आश्रम, भूषण, इल्कस, मुकुल, वसन्त, तडाग, पिटक, विटङ्क, माष

स्कन्दपुराण/ खण्ड –७ (प्रभासखण्ड:)/अर्बुदखण्डम् ; अर्बुद कार्द्रवेय:

अष्टाध्यायी–गणपाठ: ; वज्र, कर्पट, शिखर, कल्क, नाट, मस्तक, वलय, कुसुम, तृण, पङ्क, कुण्डल, किरीट, अर्बुद, अङ्कुश, तिमिर, आश्रम, भूषण, इल्वस, मुकुल, वसन्त, तडाग, पिटक, विटङ्क, माष

अष्टाङ्गहृदयम्/ निदानस्थानम्; एक–दोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्वि–दोष–जम्। त्रि–दोष–जं त्यजेत् स्रावि स्तब्धम् अर्बुद–कारि च।। १७।। १६.१७ बअ त्रि–दोषं तत् त्यजेत् स्रावि रक्त–मार्गं निहत्याशु

अष्टाङ्गहृदयम्/ उत्तरस्थानम्; चार्क–च्छद–सुधा–सामुद्र–गुड–कांजिकै:। प्रच्छाने पिण्डिका बद्धा ग्रन्थ्य्–अर्बुद–विलायनी।। ८.१+(३)।। ३०.८.१+(३) अव् जीर्णार्द्रार्क–च्छद–सुधा– ३०.८.१+(३) ब्व्

वाचस्पत्यम्/ अरण्यजीव; अर्बुदमीषत्कठिनं मांसपिण्डमयं भवति'' मिता०। अर्बुदि पु० अर्बुदमिवाचरति अर्बुद + क्विप् इन् । सर्व्वव्यापके ईशाने। ''अर्बुदिर्नाम योदेवईशानश्चन्यर्बुदि:

अष्टाङ्गहृदयम्/ निदानस्थानम्; एक–दोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्वि–दोष–जम् । त्रि–दोष–जं त्यजेत् स्रावि स्तब्धम् अर्बुद–कारि च।। १७।।

यहाँ अर्बुद रोग की बात हो रही है जो त्रिदोष से उत्पन होता है।

त्रि–दोषं तत् त्यजेत् स्रावि रक्त–मार्गं निहत्याशु शाखा–संधिषु मारुत:। निविश्यान्यो–ऽन्यम् आवार्य वेदनार्भि हरत्य् असून्।। १८।।

रक्त–मार्ग निहन्त्य् आशु वायौ पञ्चात्मके प्राणो रौक्ष्य–व्यायाम–लङ्घनै:। अत्य्–आहाराभिघाताध्व–वेगोदीरण–धारणै:।। १९।।

रूक्ष–व्यायाम–लङ्घनै: कुपितश् चर्क्षु–आदीनाम् उपघातं प्रवर्तयेत्। पीनसार्दित–तृट्–कास–श्वासादींश् चामयान् बहून्।। २०।।

अष्टाङ्गहृदयम्/ उत्तरस्थानम्; वर्त्मान्त मांस–पिण्डाभ: श्वयर्थु ग्रथितो ऽ–रुज:। सास्रै: स्याद् अर्बुदो दोर्षै विषमो बाह्यतश् चल:।। २४।।

चर्तु–ऋवशर्ति इत्य् एते व्याधयो वर्त्म–संश्रया:। आद्यो ऽत्र भेषजै: साध्यो द्वौ ततो ऽर्शश् च वर्यजेत्।। २५।।

पक्ष्मोपरोधो याप्य: स्याच् छेषांच छस्त्रेण साधयेत्। कुट्टयेत् पक्ष्म–सदनं छिन्द्यात् तेष्व् अपि चार्बुदम्।। २६।।

यहाँ प्रमुख रूप से निम्न श्लोकों में *मुँह, तालु, कण्ठ एवं जिह्वा के अर्बुद* की बात हो रही है;

कण्ठोपरोध–तृट्–कास–वमि–कृत् गल–शुण्डिका।
तालु–मूये नि–रुङ् मांसं संहतं तालु–संहति:।। ३८।।
पद्माकृतिस् तालु–मध्ये रक्ताच् छ्वयर्थु अर्बुदम्।
कच्छप: कच्छपाकारश् चिर–वृद्धि: कफाद् अ–रुक्।। ३९।।
कोलाभ: श्लेष्म–मेदोभ्यां पुप्पुटो नी–रुज: स्थिर:।
पित्तेन पाक: पाकाख्य: पूयास्रावी महा–रुज:।। ४०।।
वात–पित्त–ज्वरायासैस् तालु–शोषस् तद्–आह्वय:।
जिह्वा–प्रबन्ध–जा: कण्ठे दारुणा मार्ग–रोधिन:।। ४१।।
मांसाङ्कुरा: शीघ्र–चया रोहिणी शीघ्र–कारिणी।
कण्ठास्य–शोष–कृद् वातात् सा हनु–श्रोत्र–रुक्–करी।। ४२।।
वक्त्रे सर्व–त्र चेत्य् उक्ता: पञ्च–सप्तर्ति आमया:।
एका–दशैको दश च त्रयो–दश तथा च षट्।। ६५।।
अष्टाव् अष्टा–दशाष्टौ च क्रमात् तेष्व् अन्–उपक्रमा:।
करालो मांस–रक्तौष्ठाव् अर्बुदानि जलाद् विना।। ६६।।

अर्बुदे ग्रन्थि–वत् कुर्यात् यथा–स्वं सु–तरां हितम्।
श्लीपदे ऽनिल–जे विध्येत् स्निग्ध–स्विन्नोपनाहिते।। ८।।

निम्नांकित श्लोकों में अर्बुद के उपचार की विधि बतायी जा रही है ;

०.८.१(२) अव् उपोदकार्क–पिण्याक– ३०.८.१+(२) ब्व् –च्छर्दै आच्छादितं घनम् जीर्णे चार्क–च्छद–सुधा–सामुद्र–गुड–काञ्जिकै:। प्रच्छाने पिण्डिका बद्धा ग्रन्थ्य्–अर्बुद–विलायनी।। ८.१+(३)।।

यहाँ मट्ठे, गुड़, शराब, कत्थे के वृक्ष के नीचे की दूब का रस आदि छानकर उससे बनी पिण्डिका बाँधकर ग्रन्थिबन्धन कर उपचार की बात हो रही है इससे अर्बुद का विलय अर्थात् समापन हो जाता है।

०.८.१+(३) अव् जीर्णार्द्रार्क–च्छद–सुधा– ३०.८.१+(३) –सामुद्रं तुल्यकाम्बुभि: ३०.८.१+(३) च्व् प्रच्छन्ने पिटिकां बद्ध्वा ३०.८.१+(३) च्व् प्रच्छानैं पिण्डिकां बद्ध्वा ३०.८.१+(३) द्व ग्रन्थ्य्–अर्बुद–विलायनम् सिराम् उपरि गुल्फस्य द्वय्–अङ्गुले पाययेच् च तम्। मासम् एरण्ड–जं तैलं गो–मूत्रेण समन्वितम्।। ९।।

उपर्युक्त उद्धरण में एरण्ड के तेल में गो मूत्र मिलाकर एक महीने तक उपचार की बात हो रही है।

निम्न श्लोकों में *मांसार्बुद* की बात हो रही है ;

पित्तासृग्भ्यां त्वच: पाकस् त्वक्–पाको ज्वर–दाह–वान्।
मांस्–पाक: सर्व–ज: सर्व–वेदनो मांस–शातन:।। २३।।
स–रागैं असितै: स्फोटै: पिटिकाभिश् च पीडितम्।
मेहनं वेदना चोग्रा तं विद्याद् असृग्–अर्बुदम्।। २४।।
मांसार्बुदं प्राग् उदितं विद्रधिश् च त्रि–दोष–ज:।
–ष्णानि भूत्वा मांसानि विशीर्यन्ते समन्तत:।। २५।।
पक्वानि संनिपातेन तान् विद्यात् तिल–कालकान्।
मांसोत्थम् अर्बुदं पाकं विद्रधिं तिल–कालकान्।। २६।।
चतुरो वर्जयेद् एषां शेषाञ् छीघ्रम् उपाचरेत्।
विंशर्ति व्यापदो योर्ने जायन्ते दुष्ट–भोजनात्।। २७।।
विषम–स्थाङ्ग–शयन–भृश–मैथुन–सेवनै:।
दुष्टार्तवाद् अपद्रवैं बीज–दोषेण दैवत:।। २८।।

वाचस्पत्यम्/ अरण्यजीव में 'अर्बुद' के अनेक प्रकार एवं लक्षण का उद्धरण देखें ;

अर्बु (र्बु)द न० अर्ब (र्व) विच् तस्मै उदेति उद् + इण्––ड । (आव् इति) ख्याते

१ मांसपिण्डाकारे रोगभेदे, स च सुश्रुतोक्तवर्त्माश्रयेषुएकविंशतिरोगेषु मध्येरोगभेद: ''पृथग् दोषा समस्ताश्च यदा वर्त्म व्यपाश्रया:। सिरा व्याप्यावतिष्ठन्ते वर्त्मस्वधिकमूर्च्छिता:। विवद्धूर्य मांसं रक्तञ्च तदावर्त्मव्यापाश्रयान्। विकारान् जनयत्याशु नामतस्तान् निबोधत'' इत्युपक्रम्य उत्सर्द्दिनोप्रभृतीन् एकविंशति भेदान् उक्त्वा तेषां प्रत्येकलक्षणान्युक्तानि तत्र० ''वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम्। विज्ञेयमर्बुदं पुंसां सरक्तमवलम्बितम्'' इत्यर्बुदलक्ष्मोक्तम् अर्बुदञ्च नानाविधं मांसार्बुदर्शोणितार्बुदादिभेदात्। ''कृष्णस्फोटीसरक्तैश्च पिड़काभिश्च पीड़ितम्। यस्य वस्तिरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम्। मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससम्भवम'' एवं मेदोऽर्बुदादयोऽषि तत्रोक्तारोगभेदा ज्ञेया:।

२ दशकोटिसंख्यायां

३ तत्संख्यातेषुम एकादिकोटिसंख्या दशगृणोत्तरा उक्त्वा अर्बुदमवजंखर्व निखर्वमहा– पद्मशङ्क्षवस्तस्मात'' लीला० ''इमामेऽग्न! इष्टका शेनव:सन्त्वेका च दश च दश च शतं चेत्युपक्रम्य'' अर्बुदं चन्यर्बुदञ्च इति यजु० १७, २।

४ पर्व्वतभेदे

५ असुरभेदे च पु०। ''महान्तं चिदर्बुदं निक्रमी पदा'' ऋ० १, ५१, ४

६ काद्रवेये सर्पभेदे पु० पञ्चमेऽहनीत्युपऽक्रम्य ''अर्बुदः काद्रवेयो राजेत्याह तस्य सर्पाविशः'' इति शत० ब्राह्मण। अम्बूनि ददाति दा––क वेदेमस्य रः।

७ मेघे ''न्यर्बुदं वावृधानो अगुः ऋ० २, ११ ''अम्बूनि ददातीत्यर्बुदो मेघः'' भा० अर्बुदाकारत्वात् गर्भस्य

८ मांसपिण्डभेदे'' ''यदि पिण्डः पुमान्, स्त्रीचेत्पेशी, नपुंसकेऽर्बुदमिति'' सुश्रु० द्वितीयमासिकगर्भमात्रे न० ''प्रथमे मासि संक्लेदभूतो धातुविमूर्च्छितः। मास्यर्बुदंद्वितीये तु तृतीयेऽङ्गेन्द्रियैर्युतः'' या० स्मृ० ''द्वितीये तु मासि अर्बुदमीषत्कठिनं मांसपिण्डमयं भवति'' मिता०। अर्बुदि पु० अर्बुदमिवाचरति अर्बुद + क्विप् इन् । सर्व्वव्यापके ईशाने। ''अर्बुदिर्नाम योदेवईशानश्च न्यर्बुदिः। याभ्यामन्तरिक्ष–मावृतमियं च पृथिवी मही'' अथ० ११, ९, ४

उपर्युक्त संदर्भ एवं साक्ष्य भारतीय ज्ञान परम्परा में विद्यमान अध्ययन सामग्री का एक प्रतिशत मात्र ही है। इस विषय पर अध्ययन करने से निःसंदेह महत्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन होगा।

संदर्भ

[१]*अर्बु (बु)द न० अर्ब (र्व) विच् तस्मै उदेति उद् + इण्––ड* । (आव् इति) ख्याते

[२]एक दोषानुगं साध्यं याप्यं द्विदोषजम्। त्रिदोषजं त्यजेत स्राावि स्तब्धम् अर्बुद कारि च।१६।।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2020) **14,55-59**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 अप्रैल 2018

स्वतंत्रता की प्राप्ति एवं मिथिलांचल में उसके परिणाम

डॉ0 डी0एन0 सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *स्वतंत्रता की प्राप्ति एवं मिथिलांचल में उसके परिणाम* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *डी०एन० सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

१५ अगस्त १९४७ ई० भारतीय इतिहास का अविस्मरणीय स्वर्ण दिवस है। इसी दिन भारत स्वाधीनता की पावन पोहिका पर प्रतिष्ठित हुआ। देश का भाल अपनी खोयी हुई स्वतंत्रता को प्राप्त कर उद्दीप्त हो उठा। भारत–भूमि पर जिस अँगरेजी राज्य का आरम्भ १७५७ ई० में प्लासी युद्ध से हुआ था उसके अंत का दिन यही है। १५ अगस्त १९४७ ई० को सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ मिथिलांचल में भी स्वाधीनता उत्सव मानाया गया, मिथिला की धरती प्रसन्नता से नाच उठी और आवाल–वृद्ध के नबल कण्ठों से भारतमाता की जय ध्वनि से आकाश गूँज उठा।

२६ जनवरी १९५० ई० को नवीन संविधान का भी श्रीगणेश किया गया। फलत: मिथिला भी एक नवीन चेतना से सु–सम्पन्न हो गयी जिसके लिये हमारा संविधान कृत संकल्प है– ''हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने तथा इसके नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय, विचार–प्रकाशन, विश्वास, धर्म तथा पूजा की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा व अवसर की समानता प्राप्त कराने तथा उन सब में भ्रातृ–भाव को जो कि व्यक्ति की मर्यादा तथा राष्ट्र की एकता का विश्वास दिलाता है, बढ़ाने का दृढ़ निश्चय करके अपनी संविधान सभा में २६ नवम्बर १९४९ ई० के दिन इस संविधान को स्वीकृत अधिनिर्मित तथा आत्मार्पित करते हैं।''

भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन के गहन अध्ययन करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में राष्ट्रीय चेतना और देश –भक्ति का अभाव परतंत्रता का मूल कारण माना जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त टुकड़े–टुकड़े में बँटे रहने की प्रवृत्ति ने भारतीयों को संकीर्ण मानसिकता के जाल में आबध्य कर लिया था। वस्तुत: महात्मा गाँधी ने अपने सात्विक प्रयास के द्वारा भारतीयों के मन में जो घृणा और वैर की भावना थी, ऊँच–नीच की जो भावना थी उसे जड़ से समाप्त करने का बीड़ा उठाया। मिथिला–वासियों के लिये यह सौभाग्य है कि सत्याग्रह का सर्वप्रथम प्रयोग उन्होंने मिथिला के ही अंग चम्पारण में प्रारम्भ किया। जिसका आगे चलकर युगान्तकारी प्रभाव हुआ। विष्णुपुराण के दसवें सकन्ध में मिथिला के विषय में विस्तृत विवेचना की गयी है जिसमें चम्पारण की चम्पकवन के रूप में रेखांकित किया गया।

* व्याख्याता, डॉ0 जाकिर हुसैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लहेरियासराय, दरभंगा (बिहार) भारत

© लेखक २०२०, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

स्वतंत्र रहना मनुष्य का प्रकृत धर्म है। परन्तु जागरूकता के अभाव में स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं रह पायी। हर्षवर्द्धन के राज्य –काल (६०६–६४८ ई०) के पश्चात् भारत में देश–प्रेम की उत्कट भावना का ह्रास होता गया। सैकड़ों वर्षों तक राष्ट्रीय एकता का अभाव रहा। वस्तुत: १९वीं शताब्दी के पहले जन–सामान्य के बीच राजनीतिक चेतना का उदय नहीं हो पाया था। अपनी स्थितियों एवं शिकायतों को प्रभावकारी रूप में व्यक्त करने के लिये उन लोगों ने किसी मंच अथवा संस्था तक का गठन नहीं किया। इस प्रकार वे राजनीतिक जीवन के प्रति उदासीन से हो गये थे। जनता में न तो राष्ट्रीयता की उग्र भावना थी और न ही पराधीनता से मुक्ति पाने के लिये उसकी ओर से कोई ठोस कार्यक्रम बन रहा था।

...परन्तु इसका यह अर्थ नहीं ग्रहण करना चाहिये कि लोग तद्युगीन शासन–व्यवस्था से संतुष्ट और प्रसन्न थे। उनमें असंतोष था और वे अपने शासक के शोषण और अत्याचार से अत्यन्त दु:खी थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि राष्ट्रीय स्तर पर एकजुट होकर न सही, पर छिट–पुट रूप से विभिन्न समुदाय के लोगों ने अपने क्षोभ को कई बार प्रकट किया था। चिन्तन के स्तर पर मिथिलावासी भी दासता की बेड़ी से मुक्ति पाने के लिये व्याकुल हो रहे थे। परन्तु, एक व्यापक संगठन के अभाव में विद्रोह की आग भीतर ही भीतर सुलग रही थी। क्रान्ति की सफलता के लिये जिस संगठन एवं एकता की अपेक्षा थी वह उन लोगों में कभी नहीं देखी गयी। देशवासी संकीर्णता से ग्रस्त रहे और व्यापक स्तर पर एकजुट होकर कभी आन्दोलन नहीं कर सके। इसी से अँगरेजी शासन भारत में जमता गया और सामान्य झोकों से उसकी नींव को उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं रहा। फिर भी, दासता के दुर्वह भार से मुक्त होने की तीव्र आकुलता लोगों में विद्यमान थी।[१]

अँग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ मिथिलावासियों के मन में १७६९–७० ई० के भीषण अकाल के समय में तीव्र घृणा की भावना घर करने लगी। उस भीषण अकाल में सहस्रों की संख्या में अन्नाभाव के कारण आबाल–वृद्ध, नर–नारी काल कवलित हुए। बंगाल से कम्पनी के किसी पदाधिकारी ने ९ मई १७७० ई० को एक पत्र कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स को लिखा था उसमें मिथिला तथा उसके संलग्न अंचलों की दुर्भिक्ष स्थिति एवं उसकी विभीषिका का वर्णन किया गया था। उसने बताया था कि पूर्णियाँ जैसे सम्पन्न अंचल में दुर्भिक्ष के कारण उसके एक तिहाई आदिवासी कराल काल के विकराल काल में प्रवेश कर गये। यही दशा और स्थानों की भी है।[२]

इन विपदायों ने मिथिला के जन–मानस को झकझोर दिया। कम्पनी शासन के खिलाफ विद्रोह की भावना उठने लगी। जो लोग तटस्थ थे, उनलोगों को भी अकाल की पीड़ा ने सोचने को मजबूर कर दिया। इस घोर विपत्ति के समय कम्पनी के शासकों ने राहत कार्य के लिये कुछ सोचा भी नहीं। लोग मरते रहे, विलखते रहे और कम्पनी के अधिकारी से लेकर गुमाश्ता तक जश्न मनाते रहे। बौद्धिक स्तर पर इस कु–शासन के खिलाफ चिन्तन प्रारम्भ हो गया और लोग, इस शासन में बदलाव की इच्छा चाहने लगे।

१८५७ ई० से ही मिथिला के लोग स्वतंत्रता के लिये व्याकुल हो उठे थे। इसका प्रमाण यह है कि वीर बाबू कुँवर सिंह के नेतृत्व में ब्रिटिश शासन के खिलाफ जो व्यूह रचना की गयी थी उसमें मिथिलावासियों ने तन–मन और धन से सहयोग किया था। परन्तु स्वतंत्रता के लिये जिस समग्र चेतना की आवश्यकता होती है उसका अभाव असहयोग आन्दोलन से पूर्व तक दृष्टिगोचर होता है। इसका मूल कारण यह प्रतीत होता है कि मिथिला में अँगरेजी शिक्षा का विकास बहुत ही धीमी गति से प्रारम्भ हुआ। १८७८ ई० में दरभंगा में मात्र एक अंग्रेजी स्कूल 'राज हाई–स्कूल' की स्थापना की गयी। यहाँ के परम्परावादी लोग अँगरेजी शिक्षा को हेय दृष्टि से देखते थे। यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अँगरेजी शिक्षा का प्रारम्भ कार्यालयों में काम करने वाले 'लिपिक' तैयार करने के लिये किया था, परन्तु इस शिक्षा का लाभ भारतीयों ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उठाया। यह अँग्रेजी शिक्षा का ही प्रभाव था कि भारत के लोगों ने भ्रातृत्व, सह–अस्तित्व और देश–भक्ति के महत्व को समझा। अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में रामधारी सिंह 'दिनकर' ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है –''अँगरेजी के सम्पर्क से हिन्दू धर्म में जागृति की ऐसी लहर उठी कि हिन्दुत्व का रोग ही दूर हो गया और अँग्रेजी पढ़ने के कारण ही भारतीयों में राष्ट्रीयता की उमंग उठी जिससे वे अपने अधिकारों की माँग करने लगे। अँग्रेजी भाषा और भारत में चलने वाले अँग्रेजी शासन में कभी सामंजस्य उत्पन्न नहीं हुआ। अँगरेजी भाषा के द्वारा भारतीय छात्रों को वे विचार सिखाये जाते थे जो स्वतंत्रता के विचार थे, जो क्रान्ति के विचार थे, जो गौरव, वीरता और बलिदान के विचार थे।[३] यही कारण है कि राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम बंगाल में दृष्टिगोचर होता है। बंगाल के युवक सर पर कफन ओढ़कर स्वतंत्रता के दीवाने हो गये।

मिथिला के सपूत महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह ने राष्ट्रीय आन्दोलन के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। वस्तुतः महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह का अवतरण पुनर्जागरण काल में हुआ था। देश की आजादी के लिये राष्ट्रीय एकता और देश–प्रेम की भावना को मजबूत करने का प्रयास चल रहा था और इस प्रयास में उन्होंने तन, मन, और धन से सहयोग किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उस समय के जमींदार अँगरेज के भक्त हुआ करते थे और अपनी प्रगति और वर्चस्व के लिये वायसराय की कृपा दृष्टि चाहते थे। अँगरेज अफसर उन जमींदारों पर कड़ी दृष्टि रखते थे, जो अँगरेजी हुकूमत के खिलाफ आवाज बुलन्द करने वालों का साथ देते थे। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह इस कठिन परिस्थिति में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये आयोजित जंग को प्रज्ज्वलित करने के लिये हर सम्भव कोशिश कर रहे थे। एक कुशल राजनीतिज्ञ और योद्धा की तरह महाराज यह मदद छिपे तौर पर करते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन में उनके 'गुप्त–सहयोग' का विश्लेषण इतिहासकारों ने सही ढंग से नहीं किया है। अँग्रेजी शिक्षा द्वारा प्रशिक्षित दरभंगा के महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह ने स्वतंत्रता आन्दोलन में अन्यतम योगदान किया। अखिल भारतीय काँग्रेस की स्थापना और संरक्षण में उनका जो योगदान है वह इतिहास के पन्ने में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

१९०८ ई० में कलकत्ता के क्रान्तिकारी १८ वर्षीय खुद्दीराम बोस को मुजफ्फरपुर में फाँसी दी गयी और उन्हीं दिनों चाकी ने भारत माता की वेदी पर मोकामा में अपनी आत्माहुति स्वतंत्रता की बलिबेदी पर किया। इस सब घटनाओं का प्रभाव शनैः–शनैः मिथिला के जन–मानस पर अपना प्रभाव छोड़ने लगा। परन्तु विद्रोह की आग गाँधी जी के मिथिला में आगमन के पश्चात् ही प्रज्ज्वलित हो पायी। उस जमाने में वकील समुदाय समाज का नेतृत्व करते थे और उन्हीं में से प्रबुद्ध लोगों ने जन–चेतना को जीवंत करने का प्रयास किया। उस क्रम में बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद और बाबू धरणीधर प्रसाद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विद्रोह की ज्वाला को भड़काने का काम कुछ क्रान्तिकारियों ने छिपे–तौर पर करना प्रारम्भ किया। दरभंगा के आस–पास बारूद के धुयें उठने लगे, छिपे तौर पर अस्त्र–शस्त्र का निर्माण होने लगा और आम जनता की जुबान पर क्रान्ति के गीत अठखेलियाँ करने लगा। इस आग को प्रज्ज्वलित करने का काम रामनन्दन मिश्र, लक्ष्मण झा, यदुनन्दन शर्मा, बाबू सूर्य नारायण सिंह जैसे क्रान्तिकारियों ने किया। मिथिला क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से भी क्रान्तिकारियों के लिये सुरक्षित माना जाता था, क्योंकि यह नेपाल की सीमा से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि बाहर के क्रान्तिकारी भी मिथिला में शरण लेते थे। परन्तु मिथिलावासी मूलतः गाँधी जी के मार्ग पर चलकर ही स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहता था। सत्य और अहिंसा का सम्बल ही उसे प्रिय था। कुलानंद वैदिक, सुन्दर सिंह आदि कतिपय लोगों ने गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के समय अपना जीवन देश सेवा के लिये अर्पित कर दिया। गाँधी जी को चम्पारण में सत्याग्रह के समय ब्रजकिशोर प्रसाद और धरनी बाबू ने पर्याप्त सहयोग दिया।

भारतीय स्वातंत्र आन्दोलन के इतिहास में मिथिला की देन विभिन्न रूपों में अविस्मरणीय है। आन्दोलन के हर मोड़ पर मिथिलावासियों ने स्वतंत्रता की दीपशिखा को प्रज्ज्वलित करने में, उसे उद्दीप्त करने में सहयोग दिया। परन्तु १९४२ ई० में ''भारत छोड़ो आन्दोलन'' या ''करो या मरो'' आन्दोलन के समय मिथिलावासियों ने जिस तरह अपने लहू से धरती को लाल किया वह अविस्मरणीय है। देश की बलिवेदी पर आत्मबलिदान करने का जो उदाहरण मिथिलावासियों के द्वारा प्रस्तुत किया उसका सानी शायद अन्य देश के इतिहास में भी न हो सकता है कि इन उक्ति में अतिरंजना प्रतीत हो परन्तु जिस शौर्य के साथ अबोध बालक अँग्रेजों की गोली के शिकार हुए, वे इस कथन की सच्चाई के लिये पर्याप्त है। दो सुकुमार बच्चों ने सैलिसबरी अत्याचार को चुनौती देकर स्वतंत्रता और मानवता का जयघोष किया। ये दोनों बच्चे हरिपुर के थे और इनके नाम क्रमशः शिव और नारायण थे इनकी उम्र १० से १२ वर्षों की थी। ये दोनों बच्चे सड़क पर पुल के किनारे खड़े थे, पुलिस गाड़ी लेकर वहाँ पहुँच चुकी थी, बच्चों ने पुलिस को देखकर भय बिल्कुल ही प्रकट नहीं किया। पुलिस ने डाँट बतायी –क्या कर रहे हो?

''अँग्रेजी राज्य का नाश'' –शिव ने उत्तर दिया। इसी बात पर उसे गोली लगा दी गयी। अपने साथी की स्थिति को देखकर नारायण ने जोर से आवाज लगायी –''इंक्लाब जिंदाबाद''। इस पर उसे भी गोली मार दी गयी, परन्तु क्या अँगरेजों की क्रूरता मिथिलावासियों का मुँह स्वतंत्रता की ओर से मोड़ सकी? यह आग और भी भड़क उठी। त्रिलोकनाथ हाई–स्कूल, कलुआही के आगे अवस्थित शिव नारायण क्लब आज भी स्वातंत्र्य–आन्दोलन में भाग लेने वाले बच्चों की स्मृति दिला रहा है।

वस्तुत: मिथिला विद्वत प्रसूतिनी भूमि है परन्तु भारतीय स्वातंत्र्य–आन्दोलन के क्रम में मिथिला में जो व्यापक चेतना दृष्टिगोचर हुई, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि समय आने पर मिथिला वीर प्रसूतिनी भूमि भी बन सकती है। मिथिला में स्वातंत्र्य–आन्दोलन के क्रम में जो घटनायें घटित हुई उसे एक तटस्थ इतिहासकार की दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है कि मिथला में रहने वाले लोगों का लहू में जितना गरमी होना चाहिये था वह सम्पूर्ण आन्दोलन के क्रम में दृष्टिपथ पर नहीं आता है। इसके कई कारण हो सकते हैं, परन्तु मूल कारण इसकी सहिष्णुता है अत्याचार और अन्याय को सहन करने की क्षमता जो प्रकारान्तर से एक प्रकार का दोष है, मिथिलावासियों में कुछ अधिक ही है। दूसरा कारण यहाँ के लोगों का प्रारब्ध में अटूट विश्वास होना है। स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रारम्भ के दिनों में समग्र चेतना का विकास नहीं हो पाया। धीरे–धीरे सहनशक्ति की सीमा समाप्त हो गयी। अन्य क्षेत्र के क्रान्तिकारियों को वीरगाथा कर्णगोचर होने लगी और मिथिला में भी भड़क उठी क्रान्ति की ज्वाला। कितने ही घर खाक बना दिये गये, अँगरेजों का दमन चक्र चलता रहा और मिथिलावासी नारा बुलन्द करते रहे –इंक्लाब, जिन्दाबाद!

सम्पूर्ण देशवासियों के साथ मिथिला भी गुलमी की जंजीर से मुक्त हुआ। नये संवैधानिक अधिकार प्राप्त हुए। इस प्रकार मिथिलावासी भी वर्षों की शोषण–यंत्रणा और दमन–चक्र से मुक्त हो गये। यह मिथिलावासियों के लिये गौरव का विषय है कि बिहार का पहला मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह मिथिलांचल के ही एक भाग मुंगेर जिले के निवासी थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मिथिलावासियों ने यह उम्मीद की थी कि देश के अन्य भागों के साथ–साथ मिथिला का भी चतुर्दिक विकास होगा। शिक्षा के क्षेत्र में सम्यक् विकास के लिये मिथिलांचल के लोगों ने एक विश्वविद्यालय की माँग की। इस आन्दोलन का सूत्रपात किया महान् शिक्षाविद् स्व० डॉ० अमरनाथ झा ने और उन्हें इस पवित्र कार्य में पण्डित गिरीचन्द्रमोहन मिश्र, पण्डित हरिनाथ मिश्र आदि कुछ प्रबुद्ध लोगों ने सहयोग किया। १९७२ ई० में बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री केदार पाण्डेय ने दरभंगा में मिथिला विश्वविद्यालय की स्थापना की घोषणा की। इससे पूर्व दरभंगा में ही संस्कृत भाषा को जीवित–जागृत रखने के उद्देश्य से संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना दरभंगा के महाराज कामेश्वर सिंह की प्रेरणा से हुई थी। इस विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये महाराज कामेश्वर सिंह ने अपना निवास स्थान ''आनन्द महल'' दान कर दिया था। अतएव इस विश्वविद्यालय का नाम 'कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय' रखा गया। मिथिला में दर्शन और संस्कृत साहित्य के अनेक विलक्षण ग्रंथ ताम्रपत्र पर लिखे गये थे, उन पुस्तकों को सर्वजन सुलभ करने की दृष्टि से तथा प्राचीन विद्या को सुरक्षित करने के लिए 'मिथिला रिसर्च इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की गयी। इस इन्स्टीट्यूट के द्वारा अनेक विश्व–प्रसिद्ध पुस्तकों का प्रकाशन किया गया। वस्तुत: यह संस्था विद्वानों के लिये वरदान सिद्ध हुई। सम्प्रति इस संस्था का विकास अवरूद्ध है और राजनीतिक विद्वेष का शिकार बन चुकी है।

पूसा (समस्तीपुर) में एक कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इस विश्वविद्यालय द्वारा आधुनिक पद्धति से कृषि शिक्षण एवं अनुसंधान होता है। मिथिलांचल में मेडिकल कॉलेज की भी स्थापना हुई। अभी हाल ही में एक इंजीनियरिंग कॉलेज को भी स्वीकृति प्रदान की गयी है।

वस्तुत: शिक्षा के क्षेत्र में चतुर्दिक विकास के लिये अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई और इसलिए दरभंगा को कभी–कभी वाराणसी से भी तुलना की जाती है क्योंकि दोनों ही शहरों में दो–दो विश्वविद्यालय और एक–एक विद्यापीठ है। परंतु, वास्तविक तथ्य है कि गुणात्मक दृष्टि से दरभंगा में शिक्षा का स्तर सोचनीय है।

मिथिला की भूमि कृषि योग्य है। अँग्रेजी शासन के समय जमींदारों का बोलबाला था और जमीनों पर भी ऐसे ही लोगों का कब्जा हुआ करता था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया और इस तरह जमींदारों के शोषण से आम जनता को मुक्त किया गया। परन्तु, कृषि के विकास के लिए बिजली, बाँध, नहर और परिवहन का मिथिलांचल में सम्यक् विकास नहीं हुआ। परिणामत: हर साल मिथिला के कृषक किसी–न–किसी प्रकार की विभिषिका से ग्रसित हो जाते हैं।

उद्योग के क्षेत्र में भी मिथिलांचल पिछड़ा हुआ है। व्यापक स्तर पर कभी भी इस क्षेत्र में उद्योग की स्थापना के विषय में नहीं सोचा गया। फलत: कुछ क्षेत्रों में चीनी मिल, जूट मिल, पेपर मिल आदि की स्थापना हुई परन्तु सम्यक् योजना के अभाव में ये सभी उद्योग बीमार हालत में चल रहे हैं।

यही हाल सड़क–मार्ग और रेल–मार्ग का भी है। जयनगर से समस्तीपुर तक बड़ी लाइन की माँग वर्षों से हो रही है, परन्तु सरकार मौन है। सकरी–हसनपुर रेल लाइन की विधिवत् उद्घाटन होने के बावजूद निर्माण नहीं हो पाया।

यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् मिथिलांचल का विकास योजनाबद्ध ढंग से नहीं हो पाया है। भारत की मुख्य धारा से जुड़ने के लिये मिथिलावासी को कठिन परिश्रम करना होगा। परन्तु, आधुनिक वैज्ञानिक युग में परिश्रम के साथ–साथ तकनीकी ज्ञान भी आवश्यक है और यह तकनीकी ज्ञान बिना सरकारी सहायता के सम्भव नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्प्रति मिथिला अत्यन्त ही पिछड़ा हुआ क्षेत्र है। इसके विकास के लिये बहुमुखी विकास–योजनाओं और उसके कार्यान्वयन की आवश्यकता है।

मिथिला का अतीत गौरवपूर्ण है। स्वतंत्रता–संग्राम में भी मिथिला का योगदान अन्यतम है। परन्तु, इनका वर्तमान अनेक विपदाओं से ग्रस्त है। इतिहास में कभी–कभी ऐसा भी समय आता है जब परिवर्तन की प्रक्रिया और उसकी तेजी कुछ अधिक प्रत्यक्ष हो जाती है, लेकिन साधारणत: बाहर से उसकी गति दिखायी नहीं देती। परिवर्तन का बाहरी रूप प्राय: निस्पन्द ही दीखता है। लोग जब अगति की अवस्था में रहते हैं, तब उनकी शक्ति दिनों–दिन समाप्त होती जाती है, उनकी कमजोरियाँ बढ़ती जाती है। परिणाम यह होता है कि उनकी रचनात्मक कलाओं और प्रवृत्तियों का क्षय हो जाता है तथा, अक्सर, वे राजनैतिक दृष्टि से गुलाम भी हो जाते हैं। अतएव, आज हमारे सामने जो प्रश्न है, वह केवल सैद्धान्तिक नहीं है, उसका सम्बन्ध हमारे जीवन की सारी प्रक्रिया से है और उसके समुचित निदान और समाधान पर ही हमारा भविष्य निर्भर करता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ और जमींदारों को उनकी जमींदारी की क्षतिपूर्ति देने का आश्वासन भी काँग्रेसी सरकार ने दिया। देश को स्वतंत्र करने में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अखिल भारतीय काँग्रेस के तत्कालीन नेताओं एवं सदस्यों का त्याग महान था और उनकी तपस्या उल्लेखनीय थी। अत: देश की जनता ने राष्ट्र में आदर्श शासन की स्थापना हेतु अत्यधिक मत से काँग्रेस को अपनी सरकार कायम करने के प्रयत्न में सहयोग देकर उसको सफल बनाया। उसके आरम्भ के अनेक सुधार कार्यों में जमींदारी–उन्मूलन भी एक क्रान्तिकारी कदम था। जमींदारी उन्मूलन के साथ साथ मिथिला में दरभंगा के महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह तथा बेतिया, शिवहर, मधुवन, नरहन, सुरसंड नरेश आदि का भी जमींदारीजन्य शासन भी समाप्त हो गया। अब शासन और शासित के बीच काम करने वाला मध्यवर्ती वर्ग नहीं रह गया। सामन्तशाही समाप्त हो गयी। फिर भी, मिथिलावासी हर मोर्चे पर देश मे उन्नति और तरक्की के लिये प्रयत्नशील है। मिथिलावासियों का अभिमत है कि सम्पूर्ण देश के साथ मिथिला का भी सम्यक् विकास हो।

संदर्भ ग्रंथ

[१]डॉ० सीताराम झा 'श्याम' –भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम की रूपरेखा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना –१९८१, पृष्ठ संख्या ५–६
[२]सं०आर०आर० दिवाकर –बिहार थ्रू द एजेज, पृष्ठ संख्या ५८८–८९
[३]दिनकर –*संस्कृति के चार अध्याय,* पृष्ठ संख्या ५००

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ० मनीषा शुक्ला, प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें - शीर्षक, सारांश, पाण्डुलिपि, पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक : शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें, किन्तु अपना पूरा नाम, पता, संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय, दूरभाष अथवा मोबाइल, फैक्स, ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश : कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि : इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी, जो ५ से १० पृष्ठ तक होनी चाहिए। शोधपत्र १० पृष्ठ से (सारांश, शब्द संक्षेप, संदर्भ सूची समेत) अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र (१० पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है, पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रमांक : शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष, लेखक, पृष्ठ संख्या, भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक : प्रकाशक का नाम, संस्करण संख्या, प्रकाशन वर्ष, लेखक का नाम, पुस्तक का नाम, पृष्ठ संख्या

पत्रिका : पत्रिका का नाम, लेख का शीर्षक, लेखक का नाम, प्रकाशक का नाम, अंक संख्या/ माह, वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र : प्रकाशक, तिथि, सन्, पृष्ठ संख्या।

इण्टरनेट : वेबसाइट, पृष्ठ संख्या, मुख्य शीर्षक, अन्तः शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी : मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें (उदाहरण सारणी संख्या १)

विशेष : कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो, स्वपता लिखा लिफाफा (100 रू० के टिकट सहित) भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए०पी०एस० प्रियंका रोमन (एपीएस डिजाइनर 4.0) में तैयार सी०डी० के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक की स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिक से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अन्तिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

प्रकाशन
अन्य एम.पी.ए.एस.वी.ओ. पत्रिकाएँ
सार्क अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका
www.anvikshikijournal.com

अन्य सहसंयोजन
एशियन जर्नल ऑफ माडर्न एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
अर्द्धवार्षिक पत्रिका
www.ajmams.com

IJRA

www.anvikshikijournal.com

ISSN 0973-9777
09739777
₹ 1300/-

अंक-१,२,३,४
जनवरी, मार्च, मई, जुलाई २०२०